(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का आध्यात्मिक मासिक-पत्र)

वार्षिक मू० २॥) | सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई। | एक अंक ।)
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥

सम्पादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, | सहा० सम्पादक—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

] मथुरा, १ जौलाई सन् १९४७ ई० [अंक ७

सत्य की अकूत शक्ति पर विश्वास कीजिए।

जो अपनी आत्मा के आगे सच्चा है, जो अपनी अन्तरात्मा की आवाज के अनुसार आचरण करता है, जो बनावट, धोकेबाजी, चालाकी को तिलाञ्जलि देकर ईमानदारी को अपनी जीवन नीति बनाये हुए है वह इस दुनियां का सबसे बुद्धिमान व्यक्ति है। क्योंकि सत्य को अपनाने से मनुष्य शक्ति का पुंज बन जाता है। महात्मा कानफ्यूशियस कहा करते थे कि सत्य से हजार हाथियों की बराबर बल है। परन्तु वस्तुतः सत्य में अपार बल है। उसकी समता भौतिक सृष्टि के किसी भी बल से नहीं हो सकती।

स्मरण रखिए, झूठ आखिर झूठ ही है। वह आज नहीं तो कल जरूर खुल जायगा। असत्य का जब भण्डाफोड़ होता है तो उससे मनुष्य की सारी प्रतिष्ठा नष्ट होजाती है। उसे अविश्वासी टुच्चा और ओछा आदमी समझा जाने लगता है। झूठ बोलने में तात्कालिक थोड़ा लाभ दिखाई पड़े तो भी आप उसकी ओर ललचाइए मत, क्योंकि उस थोड़े लाभ के बदले में अन्ततः अनेक गुनी हानि होने की संभावना है।

आप अपने वचन और कार्यों द्वारा सचाई का परिचय दीजिए। सत्य उस बीज के समान है जो आज छोटा दीखता है पर अन्त में फल फूल कर विशाल वृक्ष बन जाता है। जो ऊंचा, प्रतिष्ठा युक्त और सुखशान्ति का जीवन बिताने के इच्छुक हों उनका दृढ़ निश्चय होना चाहिए कि हमारे वचन और कार्य सचाई से भरे हुए होंगे।

सद्ज्ञान का संचय करो।

आज साधन और सम्पत्ति को देखकर किसी मनुष्य की महत्ता का अनुमान लगाया जाता है। परन्तु अनुमान लगाने की यह प्रणाली गलत है। धन स्थूल वस्तु है—कालचक्र का एक ही झटका लगाने पर, जरा सी देर में वह नष्ट होसकता है। अग्निकाण्ड, बाढ़, चोरी, घाटा, अकाल, उपद्रव, आक्रमण या किसी अन्य दुर्घटना के आने पर बड़े बड़े लखपती, करोड़पती भिखारी बन जाते हैं। ऐसी अस्थिर चीज़ का कुछ अधिक संग्रह होजाना कोई ऐसी बात नहीं है जिस पर कोई आदमी अभिमान करे या उसको महत्व दिया जाय।

ऐसा भी होसकता है कि कोई आदमी चोरी से, जुए से, सट्टे से, लाटरी से, बेईमानी से, दान से, उत्तराधिकार या किसी अन्य आकस्मिक घटना से धनी होजाय। क्या ऐसे धनवान को केवल इसी लिए महापुरुष समझा जासकता है कि उसके पास अधिक मात्रा में धन जमा है ?

दूर से देखने वालों को ऐसा प्रतीत होता है कि जिनके पास धन जमा है वे जरूर सुखी रहते होंगे, पर वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है। अधिकांश धनी ऐसे हैं जो निर्धनों की अपेक्षा अधिक चिन्तित, भयभीत, दुखी, बेचैन, उद्विग्न एवं अशान्त रहते हैं उनका शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य जर्जर होजाता है। चमकदार कागज के घोड़े को देख कर बालक बड़े प्रसन्न होते हैं, उसे असली घोड़े से ज्यादा सुन्दर मूल्यवान और आकर्षक समझते हैं, पर बुद्धिमान लोग जानते हैं कि यह आकर्षण बे मतलब है। कागज का घोड़ा जगह घेरे खड़ा है पर इससे कोई लाभदायक कार्य सिद्ध नहीं हो सकता, कोई प्रयोजन हल नहीं होसकता। यही बात धन के संबंध में है। अधिक वस्तुएं, साधन, जायदाद सम्पत्ति होने मात्र से कोई व्यक्ति सुखी नहीं होसकता, चाहे बाहर से देखने वालों को वह कितना ही अमीर क्यों न दिखाई पड़ता हो। रेशमी कपड़े, स्वादिष्ट भोजन, आलीशान कोठी बढ़िया मोटर होते हुए भी उसके आन्तरिक सुख में वृद्धि नहीं होसकती।

सुख धन के ऊपर निर्भर नहीं, वरन् सद्ज्ञान के, ऊपर आत्म निर्माण के ऊपर, निर्भर है। जिसने आत्मज्ञान से अपने दृष्टिकोण को सुसंस्कृत कर लिया है वह चाहे साधन सम्पन्न हो चाहे न हो, हर हालत में सुखी रहेगा। परिस्थितियां चाहे कितनी ही प्रतिकूल क्यों न हों, वह प्रतिकूलता में अनुकूलता का निर्माण कर लेगा। उत्तम गुण और उत्तम स्वभाव वाले मनुष्य बुरे लोगों के बीच रहकर भी अच्छे अवसर प्राप्त कर लेते हैं। महात्मा इमरसन कहा करते थे कि मुझे नरक में भेज दिया जाय तो मैं वहां भी अपने लिए स्वर्ग बना लूंगा। विचारवान् मनुष्य के लिए सचमुच ही इस संसार में कहीं कोई कठिनाई नहीं है, शोक, दुख, चिन्ता और भय का एक कण भी उनतक नहीं पहुंच पाता। प्रत्येक दशा में वे प्रसन्नता, सन्तोष और सौभाग्य अनुभव करते रहते हैं।

सद्ज्ञान द्वारा, आत्म निर्माण करने का लाभ धन जमा करने के लाभ की अपेक्षा अनेक गुना महत्व पूर्ण है। महात्मा सुकरात के पास एक बार एक धनी गया और पूछा कि मैं अपने धन का सबसे अच्छा उपयोग क्या कर सकता हूं? सुकरात ने कहा—"मेरा कहना माने तो तू अपनी थैलियों को अपनी खोपड़ी के अन्दर उंडेल ले।" उनके कहने का तात्पर्य यह था कि इस धन के बजाय तू सद्ज्ञान के संचय लिए प्रयत्न कर। सचमुच जो जितना ही ज्ञानवान है वह उतना ही बड़ा धनी है। यही कारण है कि निर्धन ब्राह्मण को अन्य सम्पन्न वर्णों की अपेक्षा अधिक सम्मान दिया जाता है।

मनुष्य की सबसे बड़ी पूंजी ज्ञान है। इसलिए अखंडज्योति के पाठको! वास्तविकता को समझो धन के पीछे दिन रात पागल रहने की अपेक्षा सद्ज्ञान का संचय करो। आत्मनिर्माण की ओर अपनी अभिरुचि को मोड़ो।

मथुरा १ जौलाई १९४७

देवता, मनुष्य और राक्षस।

हमारे धर्मग्रन्थों में देवता मनुष्य और राक्षसों का वर्णन मिलता है। उनका चित्र इस प्रकार खींचा गया है जिससे यह प्रतीत होने लगता है कि यह तीनों एक दूसरे से भिन्न जातियाँ हैं। देवताओं और राक्षसों का आकार प्रकार, निवास स्थान, बलपुरुषार्थ तथा विचार कार्य मनुष्यों से भिन्न प्रकार का होने का उल्लेख मिलता है इससे ऐसा लगता है कि यह कोई प्रथक जातियाँ होंगी।

पर वस्तुतः ऐसा नहीं है। कविने अपनी कवित्व मयी भाषा में उनका वर्णन किया और चित्रकारों ने अपनी कल्पना शीलता का अलंकारिक उपयोग करके उन्हें चित्रित किया है। देवताओं की असाधारण सुन्दरता उनके आत्मिक सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब है और राक्षसों की आन्तिरिक शैतानी को उनके चेहरे कुरुप, भयानक एवं घृणास्पद बना कर उनकी बुरी शकलें बनाई गईं हैं।

वास्तव में यह तीनों ही मनुष्य होते हैं। गुण कर्म और स्वभाव के भेद से उन्हें तीन श्रेणियों

भांति यह आदि काल की वैदिक वर्ण व्यवस्था है। जब सामाजिक जीवन का अधिक विस्तार नहीं हुआ था तो व्यवसाय बांटने की जरूरत न थी। सभी लोग प्रायः एक जैसे कार्य क्रम रखते थे। एक ही परिवार या एक ही व्यक्ति चारों वर्णों का काम कर लेता था, पर जब सामाजिक जीवन अधिक विस्तृत होगया, जनसंख्या की वृद्धि, साधनों की अधिकता एवं वैज्ञानिक उन्नति की वृद्धि के कारण जब अनेकों समस्यायें अनेकों काम बढ़ गये तो सुव्यवस्था की दृष्टि से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के काम अलग अलग वर्गों में बाँटने पड़े। इससे पूर्व जब इस प्रकार का विभाजन नहीं हुआ था, तो विचार एवं कार्यों के अनुसार मनुष्यों की श्रेणी होती थीं। इसका अर्थ यह नहीं कि वे वंश परम्परा से होते थे। जैसे चोर, शराबी, व्यभिचारी, दयालु, दानी, विद्वान किसी नियत वंश में नहीं होते उसी प्रकार देवता, मनुष्य और राक्षस भी किसी विशेष वंश के नहीं होते थे, गुण, कर्म और स्वभाव के कारण अपने आप यह वर्गीकरण होजाता था। उनमें परिवर्तन होने पर वह वर्ग भी बदल जाते थे।

देवता वे होते है जो दिया करते हैं। जिनका स्वभाव स्वात्विक होता है, जिन्हें सात्विक विचार एवं कार्य पसंद होते हैं। परोपकार, सेवा, सहायता, ज्ञानदान, सत्कर्मों की वृद्धि, गिरों को उठाना, सबको अपना समझना, प्राणिमात्र पर प्रेम करना, अपनी शक्तियों को अपने लिए कम से कम लाभ लेकर अधिकांश को दूसरों को दे देना, लोक कल्याण में, जनसेवा में, दत्त चित्त रहना, आत्मशुद्धि, संयम, तप, ईश्वराराधन में अधिक रुचि रखना, भीतर और बाहर सुख शान्ति की वृद्धि करना यह देवताओं का काम था। अच्छे काम करने वालों पर वे आकाश से पुष्प बरसाते हैं इसका तात्पर्य यह है कि वे उन्हें प्रोत्साहन देते हैं। जीवित देवता शुभ कर्म करने वालों को मौखिक प्रोत्साहन एवं क्रियात्मक सहयोग देते हैं

प्रेरणा एवं प्रोत्साहन भरते हैं । इस प्रकार के गुण कर्म स्वभाव वाले व्यक्ति देवता कहलाते हैं।

मनुष्य वह है जो अपनी मर्यादा पर स्थिर है जिसे अपनी आन, बान, शान का ध्यान है। जो आत्म गौरव की, आत्म सम्मान की रक्षा के लिए नीच कामों में हाथ नहीं डालता, वचन पूरा करना, प्रतिज्ञा निबाहना, धर्म मर्यादा की रक्षा करना जिसे प्राण प्रिय होता है। पुरुषार्थ द्वारा जो समृद्धि उपार्जित करता है, साहस द्वारा जो यशस्वी बनता है, जो स्वयं निर्भय रहता है और दूसरों को अभय प्रदान करता है वह मनुष्य है। रजोगुण प्रधान होते हुए भी उसकी प्रगति सतोगुण की ओर होती है । मनुष्यता को कलंकित करने वाले विचारों, कार्यों और व्यक्तियों से लड़ने के लिए वह सदा तत्पर रहता है । एकता मेलजोल, सबकी बढ़ोतरी उसे पसंद होती है । इस प्रकार की प्रवृत्तियां जिसमें प्रधान हों उसे मनुष्य कहते हैं।

असुर वे हैं—जिनको अपना स्वार्थ ही सर्वोपरि है। अपने लाभ के लिए जो दूसरों की हानि की परवा नहीं करते, कभी कभी तो अपना लाभ न होते हुए भी अकारण दूसरों को सताते हैं, हिंसा, हत्या, निष्ठुरता, क्रूरता, शोषण, उत्पीड़न, अन्याय, एवं अत्याचार करने में जिन्हें आनन्द आता है। अहंकार में डूबे रहते हैं। आलस्य, प्रमाद एवं मनोरंजन में जिन्हें प्रीति होती है। काम वासना की असीम तृष्णा में जो रात दिन डूबे रहते हैं। जिह्वा का चटोरापन बेकाबू होता है। वे भक्ष अभक्ष की परवा न करके स्वाद को प्रधानता देते हैं । धर्म की ओर, आत्मचिन्तन की ओर, स्वाध्याय सत्संग की ओर जिनकी जरा भी रुचि नहीं होती। बड़ों की अवज्ञा करना जिन्हें सुहाता है। कृतघ्नता, छल, विश्वासघात, मलीनता, दुष्टता उनकी विशेषता, होती है। न स्वयं चैन से बैठते हैं और न दूसरों को चैन से

आसुरी प्रगति।

(श्री स्वामी शिवानंद सरस्वती)

संसार में ऐसा कोई नहीं है, जिसमें कोई दोष न हो अथवा जिससे कभी गलती न होती हो। अतएव किसी की गलती देखकर जलो मत और न उसका बुरा चाहो।

दूसरों को सीख देना मत सीखो, अपनी सीख मान कर उसके अनुसार बन जाना सीखो। जो सिखाते हैं, खुद नहीं सीखते,—सीख के अनुसार नहीं चलते, वे अपने आपको और जगत् को भी धोखा देते हैं।

सच्ची कमाई है—उत्तम से उत्तम सद्गुणों का संग्रह। संसार का प्रत्येक प्राणी किसी न किसी सद्गुण से सम्पन्न है। परन्तु आत्म गौरव का गुण मनुष्यों के लिये प्रभु की सबसे बड़ी देन है। इस गुण से विभूषित प्रत्येक प्राणी को संसार के समस्त जीवों को अपनी आत्मा की भांति ही देखना चाहिये। सदैव उसकी ऐसी धारणा रहे कि उसके मन, वचन एवं कर्म किसी से भी जगत् के किसी जीव को क्लेश न हो। ऐसी प्रकृति वाला अन्त में परब्रह्म को पाता है।

परन्तु यदि कोई शत्रुता अथवा घृणा से वशीभूत होकर रामायण इत्यादि धर्म ग्रंथों को

करके सोने की लंका बनाने की धुनि उन्हें सताती रहती है।

उपरोक्त तीन प्रकार के मनुष्यों को देवता, मनुष्य और राक्षस कहा गया है । यह श्रेणियां प्राचीन समय में भी होती थीं और आज भी हैं। पूर्व काल में राक्षस थोड़े थे, उन्हें खदेड़ते खदेड़ते भारत के अन्तिम कौने लंका में—पहुंचा दिया था। पर आज तो चारों ओर राक्षस ही राक्षस फैले दीखते हैं। हमें चाहिये कि असुरत्व का विनाश कर मनुष्यता की स्थापना करें और देवत्व को

नष्ट करता है अथवा दूसरों को अपने आगे झुकने को बाध्य करता है एवं दूसरे को अनेकों प्रकार से पीड़ा पहुंचाने में ही अपने को सुखी समझता है तो वह रावण का बड़ा भाई है और उसे तो बकासुर, तृणावर्त, केशी आदि निशाचरों का अवतार ही समझना चाहिये।

जो दूसरे पर अन्याय होते देख न्याय की रक्षा के लिये अथवा न्याय के स्थान के लिये अपने समय, धन अथवा जीवन तक की भेंट चढ़ाने को तैयार रहता है, वास्तव में उसका नाम सदैव अमर रहता है। परन्तु जो पारस्परिक घृणा एवं ईर्षा के कारण संसार में अशांति फैलाते हैं वे स्वयं अशांत रहते हैं और ऐसी प्रकृति वालों का शीघ्र ही नाश होता है। आसुरी प्रकृति का शीघ्र ही नाश होता है। क्योंकि इसका प्रासाद सत्य की आधार शिला पर नहीं है।

यह विचार छोड़ दो कि उसके धमकाने के बिना अथवा बिना छल कपट के तुम्हारे मित्र, साथी स्त्री-बच्चे या नौकर चाकर बिगड़ जायेंगे। सच्ची बात तो इससे बिलकुल उलटी है।

प्रेम, सहानुभूति, सम्मान, मधुर वचन, सत्क्रियहित, त्याग और निश्छल सत्य के व्यवहार से ही तुम किसी को अपना बना सकते हो। तुम्हारा ऐसा व्यवहार होगा तो लोगों के हृदय में बड़ा मधुर और प्रिय स्थान तुम्हारे लिये सुरक्षित हो जायगा। तुम भी सुखी होओगे और तुम्हारे सम्पर्क में जो आजावेंगे, उनको भी सुख शांति मिलेगी।

'अखंड ज्योति' का यह अंक
अपने 'अखंडज्योति प्रेस में छप रहा है

जिन स्वजनों की सहायता
से यह व्यवस्था होसकी है।
अखंड ज्योति उनके प्रति
हार्दिक कृतज्ञता
प्रकट करती है।

मनुष्यता ही धर्म है।

(श्री० पं० दीनानाथ भार्गव "दिनेश")

चाहें किसी भी धर्म को न मानना परन्तु 'मनुष्य' बनकर रहना बहुत अच्छा है। मूढ़ धर्म को मानना अच्छा नहीं है। मूढ़ धर्म का अर्थ है धर्म का सत्य, सुन्दर और शिवरूप नष्ट करके अथवा धर्म में से मनुष्यता निकाल कर उसे मिथ्याचार, पशुता, और क्रूरता से जोड़ देना। आजकल वास्तविक धर्म का स्थान इसी मूढ़ धर्म ने ले लिया है और निसन्देह यह घृणा करने के योग्य है।

ऐसे धर्म में "मनुष्यता" नहीं रहती। जहाँ मनुष्यता है, वहां चाहे धर्म का नाम हो या न हो, "धर्म" वहां अवश्य रहता है। धर्म और मनुष्यता पृथक् नहीं किए जासकते। मनुष्य बनने के लिए धर्म है। यदि धर्म न होता, तो आज मनुष्य भी न होता, मनुष्य का इतिहास भी न होता, संस्कृति सभ्यता का विकास भी न होता, और हमारा जीवन, जीवन के रस से शून्य जड़ के समान अथवा ज्ञानहीन पशु के जीवन से महत्त्वपूर्ण न होता।

यह धर्म ही है, जिसने दया, प्रेम, सेवा सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य का सन्देश दिया। वह धर्म ही है जिसने शिक्षा, कलाकौशल, सम्पूर्ण ज्ञान और विज्ञान को सुरक्षित रक्खा। धर्म मनुष्य की आत्मा है, वह देखने में नहीं आता। यदि दीख गया, तो वह धर्म नहीं रहता। अन्दर रह कर धर्म जीवन में प्राण भरता है और उसे ज्योतिर्मय करता है।

ऐसे सच्चे, वास्तविक, धर्म से चिढ़ना उससे, घृणा करना और उसके सत्य स्वरूप को न जानकर उसे छोड़ देना भयंकर पतन की सूचना है। और उससे भी बड़ा पतन है, धर्म में मूढ़ता को जोड़ कर उसका स्वांग बनाना।

लक्ष्य के लिए बढो ! जीवन को सफल बनाओ।

जातो जायते सुदिनत्वे अन्हां समर्य आ विदथे वर्धमानः। पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम्।

ऋग्वेद ३।८।५

(जात.) जीव (अन्हाम्) दिनों को (सुदिनत्वे) सुदिन करने के निमित्त (जायते) उत्पन्न होता है। वह (समर्ये) जीवन संग्राम के निमित्त (विदथे) लक्ष प्राप्ति के निमित्त (आ) सब प्रकार से (वर्धमानः) बढ़ता है। (धीरः) धीर पुरुष (मनीषा) बुद्धि से (अपसः) कर्मों को (पुनन्ति) पवित्र करते हैं। और (विप्रः) सुधी ब्राह्मण (देवया) दिव्य कामना से (वाचम्) वाणी को (उत इर्यति) उच्चारण करता है।

जिन्दगी के दिन तो पशुपक्षी भी काटते हैं। मौत के दिन तो कीट पतंग भी पूरे करते हैं, मनुष्य इस प्रकार दिन काटने के लिए यहां नहीं आया है। उसके जीवन का एक एक दिन अमूल्य है। इन दिनों को सुदिन, उत्तम दिन, महान दिन, महत्व पूर्ण दिन, बनाने के लिए वह उत्पन्न होता है, जीवन धारण की सफलता दिनों को सुदिन बनाने में है। जो दिन महान कार्य करने में, आत्मोन्नति में, धर्माचरण में, परमार्थ में, कर्तव्य पालन में, लोक सेवा में व्यतीत होजाते हैं वही सुदिन हैं। जैसे वायु, सुगंधित और दुर्गन्धित पदार्थों के संसर्ग से बुरी भली कहलाती है। उसी प्रकार दिन भी, सुन्दर,उत्तम कर्मों के द्वारा सुदिन और बुरे कर्मों के कारण दुर्दिन बन जाते हैं। मनुष्य अपने जीवन दिनों को सुदिन बनाने के उद्देश्य से उत्पन्न होता है।

सुदिन किस प्रकार बने ! इसका उत्तर वेद ने 'समर्य' और 'विदथे' शब्दों में दिया है लक्ष स्थिर करके सफल बनाया जासकता है। बिना लक्ष का जीवन वैसा ही है जैसे बिना सवार का छुट्टल घोड़ा, बिना पतवार की नाव, बिना डोरी की पतंग, परिस्थितियों के झोंके इन्हें चाहे जिधर उड़ा ले जाते हैं। जिस पथिक का लक्ष स्थिर नहीं, कभी पूरब को चलता है तो कभी पश्चिम को लौट पड़ता है, कुछ दूर उत्तर को चलता है फिर दक्षिण की ओर मुड़ पड़ता है, ऐसा रास्तागीर भला किसी स्थान पर किस प्रकार पहुंच सकेगा ? उसकी यात्रा का क्या परिणाम निकलेगा ? हर बुद्धिमान पथिक चलना आरम्भ करने से पूर्व यह निश्चय कर लेता है कि मेरा लक्ष किस स्थान पर पहुंचना है। इस निश्चय से ही वह दिशा नियत करता है,रास्ता मालूम करता है और बिना इधर उधर भटके निश्चत गति से उस राह पर चला जाता है और नियत स्थान तक पहुंच जाता है। मनुष्य को भी पहले अपना लक्ष स्थिर करना आवश्यक है। मुझे अमुक तत्व प्राप्त करना है, यह निश्चय जब भली भांति होजाता है तभी एक निश्चत कार्यक्रम बनता है अन्यथा कभी यह, कभी वह पाने के लिए उछलकूद होती रहती है। बन्दर एक डाली से दूसरी पर उचकता फिरता है उसी प्रकार लक्ष हीन मनुष्य कभी यह, कभी वह चाहता है, इसे छोड़ता है, उसे पकड़ता है। पर जिसने लक्ष स्थिर कर लिया है वह बन्दूक की गोली की तरह सनसनाता हुआ अपने निशाने पर जापहुंचा है : उछलने कूदने वाले का जीवन दुर्दिनों में निष्फलता में व्यतीत होता है पर लक्ष वाला अपने जीवन को सुदिन बना लेता है।

लक्ष स्थिर करने में मनुष्य स्वतंत्र है। अज्ञानी मनुष्य मन की, इन्द्रियों की, भूख बुझाने में प्रसन्न रहते हैं। और ज्ञानी आत्मोन्नति के लिए, आत्मा की क्षुधा पूर्ति के लिए प्रयत्न शील रहते हैं। अज्ञानी दृष्टि कोण के द्वारा चिन्ता, शोक, क्लेश,

शान्ति, यह दो ही मार्ग हैं एक प्रेय दूसरा श्रेय। एक प्रिय लगने वाला है, दूसरा कल्याण देने वाला है। हिरण्यकश्यपु रावण, कंस, दुर्योधन, सरीखे प्रेय को लक्ष बनाते हैं, हरिश्चन्द्र, शिवि, दधीच, मोरध्वज, प्रहलाद, ध्रुव ईसा, गान्धी जैसे महापुरुष श्रेय को अपना लक्ष बनाते हैं। दोनों में से जो पसन्द हो उसे मनुष्य चुन सकता है। पर वेद भगवान उसी लक्ष को स्थिर करने की सलाह देते हैं जिससे दिनों को सुदिन बनाया जासके! ऐसा लक्ष-श्रेय ही होसकता है। श्रेय को अपनाने में ही कल्याण है,बुद्धिमानी है।

किसी भी वस्तु की प्राप्ति के लिए श्रम करना पड़ता है, संघर्ष करना पड़ता है। यदि नवजात बालक रोना चिल्लाना, और हाथ पांव फेंकना छोड़ दे तो वह अपाहिज होजाता है, उसका विकाश रुक जाता है और शक्तियाँ विदा होजाती हैं। पथिक दिन भर मार्ग से लड़ता है,एक के बाद दूसरा कदम लगातार उठाता धरता रहता है तब कहीं आगे बढ़पाता है। विद्यार्थी, बलार्थी, धनार्थी, यशार्थी, स्वार्थी,सभी को प्रयत्न,परिश्रम एवं संघर्ष करना पड़ता है। धरती का पेट चीर कर किसान अन्न उपजाता है, गहरा गड्ढा खोदने से पानी निकलता है धातु को तपाने और कूटने से वर्तन आदि बनाते हैं। जीवन भी संघर्ष से बढ़ता है, जीवन विकाश के लिए प्रयत्न और परिश्रम आवश्यक है। आत्म कल्याण के लक्ष को पूरा करने के लिए श्रम करना पड़ता है, कठिनाइयों से लड़ना पड़ता है। समुद्र मंथन से जैसे चौदह रत्न निकले थे श्रम द्वारा जीवन मंथन करने से भी भौतिक सम्पत्तियां और दैवी सम्पदायें उपलब्ध होती हैं। इन सम्पन्नताओं के द्वारा मनुष्य बहुत आगे बढ़ जाता है, सफलता का मार्ग बहुत आसान हो जाता है।

लक्ष प्राप्ति के लिए यह संघर्ष किस प्रकार किया जाय? इस प्रश्न के उत्तर में श्रुति कहती पूर्वक कर्मों को पवित्र कर लेते हैं। साधारण कर्मों को पवित्र कर्म बना लेना यह धीर पुरुषों के विवेक का कौशल है।

कोई भी काम न तो अपने आप में अच्छा है न बुरा। उसे जिस भावना से किया जाता है उसी के अनुसार वह भला बुरा बन जाता है। पानी रंग रहित है उसमें जैसा भी रंग डाल दिया जाय वह वैसे ही रंग का बन जाता है। इसी प्रकार समस्त कर्म, करने वाले की भावना के अनुसार भले बुरे बनते हैं। कई बार सदुद्देश्य के लिए विवेक पूर्वक, सद्भावना के साथ हिंसा, चोरी, असत्य, छल, व्यभिचार तक बुरे नहीं ठहरते। भगवान कृष्ण के तथा अन्य महापुरुषों के जीवन में इस प्रकार की घटनायें मिल सकती है जब कि अनुचित कहे जाने वाले कर्मों को अपनाया गया हो, इसी प्रकार अविवेक पूर्वक या बुरे उद्देश्य से किये गये सत्कर्म भी बुरे होजाते हैं। आततायी पर दया करना, हिंसक बधिक के पूछने पर पशुपक्षियों का पता बताने का सत्य बोलना, कुपात्रों को दान देना आदि कार्यों से उलटा पाप लगता है। इसलिए कर्म के स्थूल रूप पर अधिक ध्यान न देकर उसकी सूक्ष्म गति पर विचार करना चाहिए।

दैनिक काम काज जिन्हें आमतौर से सब लोग किया करते हैं, यदि उन्हें ही सद्भावनासे, उच्च विचार से किया जाय तो वे ही यज्ञ रूप होसकते हैं। परिवार का भरण पोषण यदि इस भावना के साथ किया जाय कि "भगवान ने इतने प्राणियों की सुरक्षा, उन्नति एवं व्यवस्था का भार मेरे ऊपर सौंपा है, इस ड्यूटी को सच्चे वफादार भक्त की तरह पूरी ईमानदारी से पूरा करूंगा। परिवार के किसी व्यक्ति को अपनी सम्पत्ति न समझूंगा। बदले की किसी से कोई आशा न रखूंगा"। तो इसी उच्च भावना के कारण वह कुटुम्ब पालन, उतना ही पुण्य फल दायक बन जाता है, जितना कि उतने ब्राह्मणों

पोषण करना, उतने निराश्रितों की सेवा करना, उतने अशिक्षितों का शिक्षित बनाना। चूंकि प्राणी भगवान की चलती फिरती प्रतिमा है। इसलिए इतने प्राणियों की सेवा व्यवस्था, देव मंदिर में भगवान की पूजा करने से किसी प्रकार कम महत्व की नहीं होती।

यही कुटुम्ब पालन यदि स्वार्थ की, मालिकी की, खुदगर्जी की, बदला प्राप्त होने की, अहंकार पोषण की भावना से होता है तो वह स्वार्थ साधन कहा जायगा और भावना की तुच्छता के कारण उसका फल भी वैसा ही होता है। व्यापार, कृषि, नौकरी, शिल्प, युद्ध, उपदेश, आदि व्यवसायों को यदि यह सोच कर किया जाय कि "इन कार्यों से संसार की सुख शान्ति में वृद्धि हो, सात्विकता बढ़े, मेरे कार्य, नर नारायण को प्रसन्न करने वाले और सन्तोष देने वाले हों" तो इन भावनाओं के कारण ही वह साधारण कार्य, पुण्य मय, यज्ञ रूप बन जाते हैं।

केवल कल्पना करने, या झूठ मूठ मन मसझा लेने, या किन्हीं शब्दों को मन ही मन दुहरा लेने को भावना नहीं कहते। सच्चा संकल्प, पक्का दृष्टि कोण और अटूट विश्वास मिल कर भाव बनता है। उच्च भाव से किये हुए कार्य उच्च, अच्छे, लाभदायक, सुदृढ़ एवं सात्विक होते हैं। उच्च भावना के साथ जिस कुटुम्ब का पालन किया गया है, उसमें राजा हरिश्चन्द्र के से स्त्री पुत्र निकलेंगे। व्यभिचारिणी स्त्री और अवज्ञाकारी पुत्र वहां मिलेंगे जहाँ कुटुम्ब पोषण तुच्छ विचार धाराओं के साथ किया जाता है। उच्च दृष्टिकोण वाला ब्राह्मण यजमान को ठगने की मीन मेख लड़ाने की हिम्मत नहीं करता, उच्च दृष्टिकोण वाला क्षत्रिय किसी निर्बल या निरपराध की तरफ त्यौरी नहीं चढ़ा सकता। उच्च भावना वाला वैश्य घी में वेजीटेविल नहीं मिला सकता और न तमाखू की, गंदी पुस्तकों की, मांस मन्दिरा की दुकान खोल सकता है। जालसाजी से भरी हुई, कमजोर, नकली, मिलावटी, हानिकारक चीजें वह कितने ही बड़े प्रलोभन के बदले नहीं बेच सकता। अपने लाभ को वह ग्राहक के लाभ से अधिक महत्व नहीं देसकता। शूद्र श्रम में चोरी नहीं कर सकता, हराम का पैसा उसे विष के समान कड़ुआ लगता है। खरी मजूरी देने में दूसरे लोग ढील करें इसे तो वह किसी प्रकार सहन कर सकता है पर चोखा काम में जरा भी ढील देकर वह अपनी आत्मा को कलंकित नहीं कर सकता। इस प्रकार उच्च दृष्टि कोण के साथ किये हुए काम, संसार के लिए बड़े लाभदायक होते हैं, उनसे लोक में सुख शान्ति की वृद्धि होती है। जिसका पुण्य फल उन उच्च दृष्टिकोण वालों का मिलता है।

विचारों को उच्च बनाकर, भावनाओं को परमार्थ मयी रखकर, धीर पुरुष, विवेक द्वारा कर्मों को पवित्र कर लेते हैं। ऐसे पुरुषों के विचार और कार्य तो महान होते ही है साथ ही वे सुधी, उत्तम बुद्धिवाले, ब्रह्मपरायण, वाणी को भी दिव्य कामना से ही उच्चारण करते हैं। वाणी से कड़ुआ वचन, असत्य वचन, घमंड भरा वचन वे कदापि नहीं बोलते। जिस बात से विरोध, द्वेष, कलह क्लेश, क्षोभ होता है, पाप करने को उत्तेजन मिलता हो, निराशा उत्पन्न होती हो, भय, भ्रम या लोभ बढ़ता हो, ऐसा बचन वे नहीं बोलते। किसी को ऐसी सलाह नहीं देते जिससे उसे तुरन्त तो कुछ क्षणिक लाभ होजाय पर अन्त में दुख उठाना पड़े। सुधी लोग अपनी वाणी पर संयम रखते हैं। वेकार कतरनी सी जीभ चलाकर निष्प्रयोजन बकवास वे नहीं करते। भावना में जैसी शक्ति है वैसी ही शक्ति शब्द में भी है। इसलिए वे सोच समझ कर मुंह खोलते हैं। निन्दा, चुगली से दूर रहते हैं। उनकी वाणी में प्रेम प्रोत्साहन विनय, नम्रता, मधुरता सरलता, सचाई एवं हित कामना भरी रहती है। थोड़ा बोलते हैं पर मधुर बोलते हैं। उनके मुंह से मोती झड़ते हैं, फूल बरसते हैं। सुनने वाले के कानों में मिश्री सी घुलती है,

दुनिया में एकता पैदा करो।

ईश्वर ने तुमको इस पृथ्वी पर रक्खा है और तुम अपने करोड़ों सजातियों से आवेष्टित (घिरे हुए) हो, जिनके हृदय तुम्हारे हृदय से बल पाते हैं, जिनकी उन्नति या अवनति तुम्हारी उन्नति व अवनति के साथ और जिनका जीवन तुम्हारे जीवन के साथ सम्बन्ध संश्लिष्ट है। एकान्तवास के भय और दुःख से बचाने के लिये ईश्वर ने तुमको ऐसी इच्छायें दी हैं, जिनको तुम एकाकी अपनी शक्ति से पूरा नहीं कर सकते और जो निरंतर तुमको अपने सजातियों के साथ मिलकर रहने को प्रेरणा करती हैं। जिनके कारण तुम इतर जंतुओं से (जिनमें कि वे स्वाभाविक इच्छायें दबी पड़ी है) अधिक महत्व रखते हो। ईश्वर ने तुम्हारे आसपास ऐसे प्राकृतिक दृश्य स्थापित किये हैं, जो स्वाभाविक सौन्दर्य और वैचित्र्य से युक्त हैं। ऐसे वैचित्र्य से जो यद्यपि ईश्वरीय इच्छा का द्योतक है, तथापि सब अवस्थाओं में तुम्हारा परिश्रम चाहता है और तुम्हारे उद्योग से अपना आकार परिवर्तन करता रहता है। जितने अधिक तुम परिश्रमी और ज्ञानवान होते जाते हो, उसी परिणाम से उसकी शक्ति और स्थिति में भी उन्नति होती जाती है।

ईश्वर ने तुम्हारे हृदय में कई प्रकार की सहानुभूति और संवदेना शक्ति उत्पन्न की है, जो दूर नहीं हो सकती। जैसे दुःखित मनुष्यों पर दया करना, सुखी को देखकर प्रसन्न होना, जो दीनों पर अत्याचार करते हैं उन पर क्रोध करना, सदा सत्य की खोज में रहना, उस व्यक्ति को प्रशंसा करना जो सच्चाई का कोई नवीन अंश या रहस्य प्रकट करें, उन मनुष्यों के सहानुभूति दिखलाना जो उस सचाई को मनुष्य जाति के हितार्थ कार्य में परणित करने का उद्योग करें और उन मनुष्यों को आदरणीय एवं नन्दनीय जानना, जो यद्यपि उस सचाई को फैलाने में सफल-प्रयत्न न हुये हों, तथापि जिन्होंने अपने रुधिर से उसके बीज को सींचा और अपने प्राण उस पर न्योछावर कर दिये। ये सब तुम्हारे मानवीय उद्देश्य के चित्र हैं, जिनको ईश्वर ने तुम्हारे हृदय पर चित्रित कर दिया है, परन्तु तुम इनको क्यों स्वीकार नहीं करते और क्यों इनका खंडन करते हो? जब तुम इनके साथ का अनादर करते हो और यह कहते हो कि हम अपनी सारी शक्तियों को केवल अदृष्ट के चिन्तन में लगावें, तो संसार का आधार छोड़कर सम्भव है कि हमारे लिये असाध्य हो।

यदि संसार में तुम्हारे आने का यह प्रयोजन नहीं कि तुम अपने कर्तव्य की सीमा में और अपने हस्तगत साधनों के अनुसार ईश्वर की इच्छा को पूर्ण करो तो फिर और क्या प्रयोजन है? तुम्हारा मनुष्य जाति की एकता में जो ईश्वर की एकता का सुनिश्चित परिणाम है, विश्वास रखने का क्या फल है? यदि तुम उसकी सुनिश्चित सिद्धि के लिये उस अनुचित भेदभाव और विरोधको, जो अभी तक मनुष्य जाति के भिन्न समुदायों में भिन्नता और पार्थक्य का कारण है, दूर करने का यत्न नहीं करते।

यह भूमि हमारा कर्मक्षेत्र है, हमें यह उचित नहीं कि हम इसको बुरा कहें, किन्तु यह उचित है कि हम इसको पवित्र बनावें।

अमृत सा टपकता है। सुकरात कहा करते थे कि मुंह खोलते ही मनुष्य के अन्तःकरण का भेद खुलजाता है। सचमुच वाणी के उच्चारण मे पता जाता है कि बोलने वाला किस आत्मिक धरातल का है। जो महान आत्मा है, उसके मुख से नीच वचन नहीं निकल सकते।

पाठको फिर सुनो! वेद भगवान कहते हैं, मनुष्यो, तुम जीवन के दिनोंको सुदिन बनाने के लिए उत्पन्न हुए हो, लक्ष स्थिर करो और उसकी प्राप्ति के लिए श्रम करो। उच्च भावनायें रखकर अपने कर्मों को पवित्र बनाओ और दिव्य कामना से वाणी बोलो!

प्रसन्न रहने से—
सब दुख दूर हो जाते हैं।

प्रसादे सर्व दुःखानां हानि रस्योपजायते।
प्रसन्न चेतसो ह्याशु बुद्धि पर्यवतिष्ठते॥
गीता० २। ६५

अर्थात्—चित्त प्रसन्न रहने से उसके सब दुख दूर होते हैं और प्रसन्न चित्त होने से उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

प्रसन्न चित्त रहने से दो लाभ हैं (१) सब दुख दूर हो जाते हैं और (२) बुद्धि स्थिर होती है। सुखी आदमी का चित्त प्रसन्न रहता है। इसी बात को हम यों भी कह सकते हैं कि प्रसन्न चित्त मनुष्य सुखी होते हैं। सुख और चित्त की प्रसन्नता का आपस में अनन्य सम्बन्ध है। कई आदमी सोचते हैं कि जिसके पास साधन हैं वह सुखी रहता है और सुखी रहने से उसे प्रसन्नता होती है। पर सही बात यह है कि प्रसन्न रहने से सुख मिलता है और सुखी के पास साधनों की कमी नहीं रहती।

हंसोड़ आदमी मोटे देखे जाते हैं। कुछ लोग सोचते हैं कि मोटे होने की खुशी में हंसी आती है। पर सच्ची बात यह है कि वे हंसने स्वभाव के कारण मोटे हो जाते हैं। प्रसन्नता एक जादूभरी साधना है उससे चतुर्मुखी उन्नतियां मिलती हैं। शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, और सामाजिक, चारों प्रकार के दुख दूर करने में और इन चारों दिशाओं में उन्नति एवं समृद्धि प्राप्त करने में प्रसन्नता एक अचूक ब्रह्मास्त्र है।

नस नाड़ियों में खून का दौरा भली प्रकार होता है, गर्मी पर्याप्त मात्रा में रहती है। मांस पेशियों में चैतन्यता और फुर्ती भरी रहती है। हंसते रहने से जबड़े, कंठ स्वांस नाड़ियों और फेफड़े का और पेट का अच्छा व्यायाम होता रहता है। विशेष व्यायामों में तो किन्हीं अंगों पर थोड़ी देर के लिए बहुत दवाब पड़ता है पर हंसने से धीरे धीरे मालिश की तरह भीतरी अंगों का हलका व्यायाम होता रहता है। फलतः उनकी शक्ति बढ़ती है। हंसोड़ आदमियों के फेफड़े, जिगर तिल्ली एवं गुर्दे विशेष रूप से मजबूत पाये जाते हैं। साधारण सांस लेने से फेफड़े का आधा भाग क्रियाशील रहता है आधा भाग निष्क्रिय पड़ा रहता है। इस निष्क्रिय भाग में खांसी, स्वांस, क्षय आदि के रोग कीटाणु घुस जाते हैं और निर्विरोध रूप से अपनी वंशवृद्धि करते हुए उस व्यक्ति को मृत्यु के मुंह में घसीट ले जाते हैं। परन्तु हंसने से फेफड़ों का समस्त भाग हिलता है, इस हलचल से उनकी सफाई भली प्रकार हो जाती है जिस से उन रोग कीटों की दाल नहीं गलने पाती। अप्रसन्न, निराश, दुखी, शोकग्रस्त, क्रोधी, ईर्षालु स्वभाव के मनुष्यों का स्वास्थ भट्टी में पड़ी हुई लकड़ी की भांति जल जाता है पर जो प्रसन्न चित्त हैं वे इस विपत्ति से बचे रहते हैं। यही कारण है कि खुश मिजाज आदमी प्रायः दीर्घ जीवी होते हैं। बीमारी और अकालमृत्यु उन्हें परास्त करने में प्रायः बहुत ही कम सफल होती हैं।

मन का, मस्तिष्क का नाश करने में अप्रसन्नता से बढ़ कर और कोई घातक वस्तु नहीं है। जिसका चित्त किसी न किसी कारण से दुखी ही बना रहता है, जो आशंका, भय, असफलता से चिन्तित रहते हैं, जिन्हें द्वेष, कुढ़न, शोक, आवेश उद्वेग घेरे रहते है, जो अहंकार से गरदन फुलाये रहते हैं, सीधे मुंह किसी से बात करना जिन्हें सुहाता नहीं, ऐसे बद मिजाज आदमी अपने दुरस्वभाव के कारण अपनी मानसिक शक्तियों का सत्या नाश करते रहते हैं। उनमें से अधिकांश को तरह तरह की सनक सवार हो जाती हैं। कितने अर्ध विक्षिप्त होते हैं और कई तो बिल्कुल पागल हो जाते हैं। ऐसे लोगों को अनिद्रा, मधुमेह, बबासीर दस्त साफ न होना, जिगर बढ़जाना, मुंह से बदबू आना, दांतों में मवाद जाना, रक्त की कमी, दिल की धड़कन, खुश्की, खुजली, मुंह में छाले जैसे रोग

होजाते हैं और कितना ही इलाज करने पर भी जड़ से नहीं जाते। मानसिक उद्वेगों के कारण रक्त के श्वेत कीटाणु अशक्त होजाते हैं फलस्वरूप शरीर की रोग निरोधक शक्ति में शिथिलता आजाती है। हड्डियों के भीतर की मज्जा सूख जाती हैं, नसें सख्त पड़ जाने के कारण पैरों में हड़फूटन होती रहती है।

अप्रसन्न रहने वाले, मानसिक अशान्ति से घिरे रहने वाले लोगों का वीर्य निःस्वत्व होजाता है। उन्हें सुसंतति प्राप्त करने का सौभाग्य नहीं मिलता, या तो संतान होती ही नहीं, होती है तो निर्बल, रोगग्रस्त, अपूर्ण होती हैं। इनमें भी पुत्र की अपेक्षा कन्याएं ही अधिक होती हैं। इन बालकों को सूखा, पीलिया, दस्त, अधिक होना, पेट बढ़ जाना, आंखें दुखना जैसे निर्बलता जन्य रोग घेरे रहते हैं। वे बहुत दिन में खड़े होने और बोलने की सामर्थ्य प्राप्त कर पाते हैं। ऐसे बालक बहुधा बचपन में ही मर जाते हैं, अगर किसी प्रकार माता मसानी पर से बच भी गये तो बड़े होने पर मूर्खता आलस्य व्यसन आदि दुर्गुणों से घिरे रहते हैं। चिन्ता ग्रस्त, खिन्न मानस, माता पिता को सुसंतति से प्रायः वंचित ही रहना पड़ता है।

इस प्रकार मानसिक असंतुलन में अपना शरीर घुलता है और भावी संतति का ह्रास होता है। परन्तु जो लोग प्रसन्न रहते हैं, हंस मुख एवं खुशमिजाज रहते हैं वे सहज ही इन आपत्तियों से बच जाते हैं। इतना ही नहीं उनका स्वास्थ्य दिन दिन अच्छा होता जाता है। एक आदमी एक एक गज रोज नीचे उतरे और दूसरा आदमी एक एक गज रोज ऊपर चढ़े तो उन दोनों में नित्य की चाल की अपेक्षा दूना अन्तर होता जायगा। अप्रसन्न रहने वालों और प्रसन्न रहने वालों के बीच में नित्य दूना अन्तर पड़ता जाता है। एक दिन दिन नीचे गिरता है, दूसरा दिन दिन ऊपर चढ़ता है। प्रसन्न रहने वाले की मानसिक शक्तियां—जिज्ञासा, कल्पना, इच्छा, व्यवस्था, आशा एवं श्रद्धा शनैः शनैः मजबूत होती जाती है और वह प्रतिदिन अधिक मनस्वी बनता जाता है।

प्रसन्न रहने से सामाजिक उन्नति भी होती है। हंसता चहरा एक प्रकार का फूल है जिसे देख कर दर्शकों का मन अनायास ही उस ओर खिंच जाता है। उसके सम्पर्क में आने के लिए, उसकी मित्रता पाने के लिए, सभी का मन ललचाता है। कहते हैं कि हंसने वाले के मुंह से मोती झड़ते हैं और फूल बरसते हैं। इस दैवी उपहार को समेटने का लोभ भला कौन संवरण कर सकता है? जिससे थोड़ी देर भी उसकी बातें होजाती हैं वहीउसका स्नेही बन जाता है। अनेक व्यक्तियों की सहानुभूति, घनिष्ठता, में भी एक बहुत बड़ा बल है। जिनके द्वारा साधारण मनुष्य बड़ी उन्नति कर जाते हैं। बिना दूसरों की सहायता के केवल मात्र अपने पुरुषार्थ से हमारी जीवन यात्रा आगे नहीं बढ़ सकती। समृद्धि की शिला सामाजिक सहयोग पर रखी होती है। दूसरों का सहयोग प्राप्त करने के साधनों में प्रसन्न रहना, सब से महत्व पूर्ण कारण है। हंसमुख को बिना मांगी सहायताएं प्राप्त होती रहती हैं।

प्रसन्नमुख मुद्रा, प्रमाणिकता की साक्षी देती है। जो स्थिर चित्त है, जो सुखी है, जो सफल है, जो संतुष्ट है वह प्रसन्न रहेगा। अथवा जो प्रसन्न रहेगा उसमें यह यह चारों बातें होंगी। यह चारों सम्पदाऐं जिनके पास हैं वह निश्चय ही बुद्धिमान, गम्भीर, विश्वासनीय, साहसी, कुशल एवं सुयोग्य समझा जाता है। प्रसन्न रहना देखने में मामूली बात है पर उसके पीछे अनेकों मौन रहस्य छिपे होते हैं। यह रहस्य सामने वाले के ऊपर अपनी छाप छोड़े बिना नहीं रहते। इन तथ्यों के आगे सामने वाले को नत मस्तक होना पड़ता है, यही कारण है कि प्रमुदित रहने वाले से शत्रुता रखने वाले मुश्किल से ही कहीं दृष्टि गोचर होते हैं। घर में, दफ्तर में, देश में, परदेश में, बाजार में, राजदरबार, में विद्वानों

में, मूर्खों में हर जगह उसका आदर होता है। हर जगह उसे सहयोग मिलता है। वह अपने आप नेता होता है, उसके प्रभाव से अनेकों को उसका अनुयायी बनना पड़ता है।

शारीरिक मानसिक और सामाजिक मजबूती होने का फल आर्थिक उन्नति के रूप में अपने आप सामने आता है। जो शरीर से कड़ी मेहनत कर सकता है, जो शान्त चित्त से एकाग्रता पूर्वक सही बात सोच सकता है, जिसे दूसरे लोग प्यार करते हैं और सहयोग देते हैं उसकी आर्थिक उन्नति होनी अवश्यम्भावी है। ऐसा आदमी, व्यापार, नौकरी, उत्पादन, जो भी अर्थ उपार्जन का मार्ग अपनावेगा उसमें अवश्य सफलता मिलेगी। जो सुयोग्य है, उसे भूखों न मरना पड़ेगा। कोई आपत्ति भी आजाय तो अपनी योग्यताओं द्वारा वह उसे हटा कर पुनः खोये हुए वैभव को प्राप्त कर लेगा। जब सब लोग हंसमुख का सहयोग करते हैं तो फिर भला लक्ष्मी सहयोग क्यों न करेगी?

गीता का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि प्रसन्न रहने से सब प्रकार के दुखों का नाश होजाता है। शारीरिक, मानसिक, सामाजिक आर्थिक सब प्रकार के दुःखों का इस एक ही ब्रह्मास्त्र से नाश होजाता है। इसलिए जो लोग दुःखों से छुटकारा प्राप्त करके सुखी रहना चाहते हैं उन्हें उचित है कि अपने स्वभाव को हंसमुख बनावें। यह सोचना भूल है कि जिसके पास, धन, स्त्री, पुत्र, विद्या, स्वास्थ्य आदि साधन हैं, जो सम्पन्न है वह प्रसन्न रहेगा। हम देखते हैं कि इन सम्पदाओं से भरे पूरे असंख्यों मनुष्य मौजूद हैं पर उन्हें इन वस्तुओं के कारण सुख मिलने के कारण दूनी चिन्ताएं आघेरती हैं। अनेकों नई समस्याएं, नई अड़चनें, नई बाधाएं उनके सामने आती रहती हैं, एक जब तक गई नहीं कि दूसरी नई दस गुत्थियां सामने आजाती हैं। इस प्रकार उसकी अशान्ति, अप्रसन्नता अपेक्षाकृत और भी अधिक बढ़ जाती है।

अधिक साधन होने से कोई सुखी नहीं हो सकता। सुख का हेतु दूसरा है जो गीता के उपरोक्त श्लोक के अन्तिम भाग में बता दिया गया है। प्रसन्न चित्त होने से तत्क्षण बुद्धि स्थिर होजाती है। इसी को यों भी कह सकते हैं कि बुद्धि स्थिर होने से तत्क्षण मनुष्य प्रसन्न चित्त रहने लगता है। बुद्धि को, संसार की पंचभौतिक, नश्वर चीज़ों के लोभ में उछलने, कूदने से रोक कर आत्म परायणता में लगा देने से वह स्थिर हो जाती है। और इस स्थिरता के साथ ही प्रसन्नता का अजस्र स्रोत प्रवाहित होने लगता है। आत्मा के लाभ के जीवन का एकमात्र लाभ समझ कर कर्तव्य परायण होने से हर कार्य में एक अद्भुत आनन्द आने लगता है। अस्थिर बुद्धिवाला, सांसारिक, अस्थिर पदार्थों को भोगने एवं जमा करने के फेर में पड़ा रहता है और पानी की लहरें पकड़ने के समान बार बार असफलता पर खीजता रहता है, पर स्थिर बुद्धि वाला, केवल मात्र अपने कर्तव्य पर ध्यान देता है, अपने धर्म को, उत्तरदायित्व को पूरी भावनाओं के साथ निबाहता है। इस कार्य प्रणाली में सफलता हर घड़ी अपने हाथ में रहती है। मैं अपना कर्तव्य ठीक प्रकार पालन कर रहा हूं इस सफलता पर वह हर घड़ी प्रसन्न रहता है, हर घड़ी आत्म सन्तोष का अनुभव करता है।

परमात्मा के पुनीत उद्यान में संसार में—खेलने का जिसे अवसर मिला हुआ है, उसे हर घड़ी प्रसन्न रहना चाहिए। काले सफेद, भले बुरे, प्रिय अप्रिय तथ्यों से भरा हुआ संसार कितना सुन्दर है इसे देखकर उसका हृदय कमल खिल—जाता है। अच्छाइयों का मधुर स्पर्श करना और बुराइयों से लड़ना यह उभय पक्षीय कार्यक्रम सामने रखकर मानों भगवान ने मीठे और तीखे षट्रस व्यंजन हमारे जीवन थाल में परोसे हैं, उनके विविधि स्वादों का विविधि प्रकार का अनुभव करते हुए हमें उसी प्रकार आनंदित होना चाहिए जैसे स्वादिष्ट षट्रस व्यंजनों का आस्वादन

सब कुछ ब्रह्म मय है।

(श्री स्वामी विवेकानंदजी)

ब्रह्म की उपासना करने से आपको किसी का भय न रहेगा। सिर पर आकाश फट पड़े या बिजली गिरपड़े तो भी आपके आनंद में कमी न होगी। सांप और शेरों से लोग भले ही डरें आप निर्भय रहेंगे, क्योंकि उन क्रूर जन्तुओं में भी आपका शान्तिमय स्वरूप आपको दीख पड़ेगा। जो ब्रह्म से एक रूप हुआ, वही वीर-वही सच्चा निर्भय है। भगवान् ईसामसीह का विश्वास घात से जिन लोगों ने वध किया, उन्हें भी उसने आशीर्वाद ही दिया। सच्चे निर्भय अंतःकरण के बिना यह बात नहीं हो सकती 'मैं और मेरा पिता एक हूं' ऐसी जहां भावना हो वहां भय की क्या मज़ाल है कि वह पास में आने का साहस करे? सब विश्व को जो अपने में देखता है—उसमें तल्लीन होता है वही सच्चा उपासक है उसीने जीवन का सच्चा कर्तव्य पालन किया है। हमारे विचार, शरीर और मन जितने निकट है, उससे भी निकट परमात्मा है, उसके अस्तित्व पर ही मन, विचार और शरीर का अस्तित्व निर्भर है। हर एक वस्तु का यथार्थ ज्ञान होने के लिये ब्रह्म ज्ञान होना चाहिये। हमारे हृदय के अत्यन्त गूढ़ भाग में उसका वास है। सुख दुःख, शरीर और युगों के बाद युग आते हैं और निकल जाते हैं, परंतु वह रूप अमर है। उसीके सत्य होने से संसार भी सत्य है। उसी के सहारे हम देखते सुनते और विचार करते हैं। वह तत्व जैसा हमारे अंतः करणों में वैसा ही क्षुद्र कीटों में भी है।

यह बात नहीं कि सत्पुरुषों के हृदय में उसका वास है और चोरों के में नहीं, जिस दिन हमें इस बात का अनुभव होगा, उसी दिन सब संदेह मिट जांयगे। जगत् का विकट प्रश्न हमारे आगे उपस्थित है, इसका उत्तर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस भावना के अतिरिक्त क्या हो सकता है? भौतिक शास्त्रों ने जो ज्ञान सम्पादन किया है, वह सच्चा ज्ञान नहीं, सत्य ज्ञान उनसे दूर है। उनका ज्ञान विशुद्धज्ञान मंदिर का सोपान भर है। 'सब कुछ ब्रह्म मय है' यह अनुभव होना ही सच्चा ज्ञान है। यही धर्म का रहस्य है, विवेचक बुद्धि के आगे इसी धर्म ज्ञान की विजय होगी।

करते हुए हम प्रसन्न होते हैं सुख, दुख, गरीबी, अमीरी, आनन्द क्लेश, भाव, अभाव अपने अपने ढंग के व्यंजन है। यही सभी अपने अपने ढंग से स्वादिष्ट हैं। एक से दूसरे का महत्व है। विरोधी भाव न हो तो हर एक वस्तु नीरस होजाय। दिन का महत्व रात के कारण होता है यदि रात न हो तो दिन के आनन्द का अनुभव ही न हो, इसी प्रकार सुख का आनंद दुख से है। दुख न हो तो जिन बातों में आज सुख समझा जाता है, फिर न समझा जासकेगा। संसार की, जीवन की, हर स्थिति हमारे लिए मंगलमयी, आनंद दायक है। स्थिति के अनुकूल अपने को बदल कर हर अवस्था में अपने को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करना चाहिए।

गीता कहती है सम्पूर्ण दुखों के निवारण का उपाय, प्रसन्न रहना है। हर वक्त, हर स्थिति में मुसकराते रहिए, निर्भय रहिए, निश्चिन्त रहिए, कर्तव्य करते रहिए और प्रसन्न रहिए। पाठको! बुद्धि को स्थिर करो और प्रसन्न रहो।

जो मौन रहता है वह मुनि नहीं। मुनि वह है जो सत्य का मनन करता है और सत्य पर आरूढ़ रहता है।

\+ \+ \+

जो परमार्थी न होते हुए भी भिक्षा का अन्न खाते हैं वे पारा खाते हैं। जो एक दिन देह फोड़ कर फूट निकलता है।

\+ \+ \+

मानसिक व्यभिचार से बचिए

(लेखक—डाक्टर पी० आर० जैन)

मानसिक व्यभिचार ही एक प्रकार का क्षय रोग है जो क्रमशः मनुष्य को कमजोर और कान्तिहीन तथा वीर्य दोषयुक्त बनाता जायगा। मानसिक व्यभिचार एक ऐसा भीषण घुन है जो मनुष्य के शरीर को बड़ी ही तीव्र गति से खोखला बना देता है, रक्त की गति मन्द और वीर्य पतला कर देता है। बुद्धि लुप्त-सी होने लगती है, यानी एक प्रकार का नशा-सा वर्तमान रहता है। ऐसा व्यक्ति इतना विषयासक्त हो जाता है कि अप्राकृतिक मैथुन का आश्रय लेता है। एक बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है वह यह कि मानसिक व्यभिचारका परिणाम अक्सर मानसिक रोग होता है और पागलपन या उन्माद आदि के होने की सम्भावना रहती है। मानसिक बीमारी से यदि कोई व्यक्ति बच भी जाये तो आगे चल कर अधिक आयु में उसे फिर वही रोग न्यूनाधिक रूप में प्रकट होगा और इसका प्रभाव उसकी सन्तान पर निश्चित रूप से पड़ेगा।

एक डाक्टर का कहना है कि मानसिक व्यभिचार के प्रभाव से ही कुछ लोगों को रक्त-चाप की बीमारी हो जाती है। कभी-कभी कुछ लोगों में स्मरण सम्बन्धी रोग या ठीक उत्तर न देने की कमजोरी आदि भी इसी मानसिक व्यभि-चार की देन है। इसी बात को लेकर एक विद्वान ने एक स्थल पर लिखा था कि शारीरिक व्यभिचार उससे कम हानिकारक है। फलतः लोगों ने इसका यह भ्रमात्मक निष्कर्ष निकाला कि ब्रह्मचर्य या वीर्य-सञ्चय दोषकारक है।

यह तो निश्चत है कि मानसिक व्यभिचार अधिक वीर्यपात से भी भयंकर है। वचन की दृष्टि से भी यदि ब्रह्मचर्य व्रत का पालन न किया गया और गन्दे-भद्दे गाने और साहित्य रस का पान किया गया तो अन्त में उसका असर भी मानसिक व्यभिचार के रूप में पड़ेगा। इसीलिये कहा गया है कि वास्तविक ब्रह्मचर्य वही है जिसका मन, वचन और कर्म से पालन किया गया हो। अतएव मन और वचन से यदि ब्रह्मचर्य व्रत का पालन न किया गया तो ब्रह्मचर्याश्रम में १०० वर्ष रहकर भी मनुष्य स्वस्थ और सफल नहीं हो सकता वरन् उसको ब्रह्मचर्याश्रम में रखना ही हितकर न होगा।

मन इन्द्रियों का राजा है। मन सबसे अधिक चंचल है। यदि उसपर वश न रहा तो वह भीषण व्यभिचार में लिप्त करके छोड़ेगा। सभी प्रकार के मनोविकारों का जन्म मनसे ही होता है और यदि उन्हें दूर न किया गया तो फिर उनका पोषण इन्द्रियां करती रहेंगी। फिर ऐसी दशा में मनुष्य कब तक वीर्य की रक्षा करेगा। मनो-विकारों से बचने के लिये खान-पान, रहन-सहन और वातावरण का भी ध्यान रखना होगा। इन तीनों कारणों से कोई एक भी मनोविकार आ सकता है और अन्त में मानसिक व्यभिचार का शिकार होना पड़ेगा।

मन, वचन और शरीर से सभी अवस्थाओं में सदैव वीर्यरक्षा का नाम ही वास्तविक ब्रह्मचर्य है। वास्तविक ब्रह्मचर्य वही होगा जो सचमुच मन, वचनों एवं कर्मों से पालन किया गया हो। बहुधा ऐसा देखा जाता है कि ऐसे नवयुवक जिनसे स्वप्न में भी यह आशा नहीं है कि उन्होंने वीर्यक्षय किया होगा, ऐसी किसी बीमारी से पीड़ित रहते हैं जो विशेषतः वीर्यक्षय अथवा वीर्य की कमजोर अवस्था से उत्पन्न हो सकती है। वह अज्ञानी युवक अपने को ब्रह्मचारी होने का ऊपरी दावा भी करता है और लोग विश्वास भी कर ही लेंगे। पश्चिमीय देशों के एवं पाश्चात्य विचारधारा में बहने वाले लोगों का एक ऐसा दल भी तैयार हुआ है जिनका यह विश्वास है कि वीर्य के अधिक संग्रह से क्षय आदि संक्रामक बीमारियां हो सकती है। इस दल के कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनका विचार है कि ब्रह्मचर्य से

आगे चलकर संक्रामक रोग होने की सम्भावना है। लेकिन परिस्थिति भिन्न है। ब्रह्मचर्य अथवा वीर्यरक्षा का अर्थ यह कदापि नहीं है कि मन और वचन से तो चौबीसों घण्टे व्यभिचार में लिप्त रहे, और ब्रह्मचारी भी बना रहे। अवश्य ही मानसिक व्यभिचार का परिणाम संक्रामक बीमारियों के रूप में मिलेगा।

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने के लिये मन और वाणी की शुद्धि के बाद यह भी अनिवार्य है कि शारीरिक अशुद्धि न आये। शारीरिक अशुद्धि बीमारी का घर है और जो रोगी है उसका ब्रह्मचारी होना भी सम्भव नहीं है। डाक्टरों एवं मनोविज्ञानवेत्ताओं का तो कहना है कि रोगी और निर्बल ही अधिक विषयी होते हैं फलतः वे क्षीण होते चले जाते हैं।

मानसिक व्यभिचार शारीरिक व्यभिचार से भी अधिक भयंकर है, इसलिए उससे बचने का प्रयत्न करना चाहिए। मन में कामुकता के भावों को असमय में बिलकुल स्थान न देना चाहिए। इस सुरक्षा को बरत कर ही हम स्वस्थ तथा दीर्घ जीवन की रक्षा कर सकते हैं।

दूसरे की त्रुटियों और बुराइयों को ही न ढूंढ़ते रहो, अपनी ओर भी देखो, जो अपनी बुराइयां सुधारने के लिये प्रयत्न शील है उसे ही दूसरी की बुराई ढूंढ़ने का अधिकार है।

\+ + +

किसी काम को करने से पहले भली प्रकार समझ लो कि इसका अन्तिम परिणाम क्या होगा।

\+ + +

जैसे किसी ओर की, कैसे ही जोर की, हवा से विशाल पर्वत विकंपित नहीं होते, वैसे ही बुद्धिमान लोग किसी की निन्दा स्तुति से विचलित नहीं होते।

\+ + +

पाप कर्म क्या क्या हैं ?

(महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय १३ से)

कायेन त्रिविधं कर्म वाचाचापि चतुर्विधम्।
मनसात्रिविधं चैव दश कर्मपथां त्यजेत् ॥

भीष्म जी बोले—हे युधिष्ठिर! शरीर से तीन, वाणी के चार और मन के तीन पाप होते हैं। इनको त्याग देना चाहिए।

प्राणातिपातः स्तैन्यं च परदारा नथापि च।
त्रीणि पापानि कायेन सर्वतः परिवर्जयेत् ॥

हिन्सा, चोरी (अन्याय से दूसरे का धन हरण करना) परस्त्री गमन, यह तीन शरीर के पाप हैं। इनको सर्वथा त्याग देना चाहिए।

असत्प्रलापं पारुष्यं पैशुन्यमनृतं तथा।
चत्वारि वाचा राजेन्द्र न जल्पेन्नानुचिन्तयेत् ॥

व्यर्थ का बकवाद, कड़ुआ भाषण, चुगलखोरी और मिथ्या भाषण। हे राजन्! यह चार वाणी के पाप हैं, इनको त्यागदे यहां तक कि मन से भी चिन्तन न करे।

अनभिध्यापरस्वेषु सर्व सत्वेषु सौहृदम्।
कर्मणा फलमस्तीति त्रिविधं मानसाचरेत् ॥

दूसरे का धन लेने की इच्छा न करना, प्राणीमात्र का शुभ चिन्तक होना, कर्मों का फल अवश्य ही मिलता है ऐसी भावना, रखना, यह मन के तीन पुण्य हैं इनके विपरीत पराये धन को चाहना, दूसरे का बुरा चाहना, कर्मों का फल नहीं मिलता ऐसी नास्तिक बुद्धि रखना पाप है।

ये पापानि न कुर्वन्ति मनोवाक् कर्म बुद्धिभिः।
ते तपन्ति महात्मानो न शरीरस्य शोषणम् ॥

जो इन दस पापों को मन वाणी कर्म और बुद्धि से नहीं करता वही महात्मा है। शरीर को सुखाने मात्र से कोई महात्मा नहीं होता।

उदार दृष्टिकोणकी आवश्यकता

(श्री० दौलतरामजी कटरहा बी० ए०)

हम स्वीकार करते हैं कि भारतवर्ष धर्म-प्रधान देश है और इसे अन्य देशवासी भी प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार करेंगे किंतु हमारा यह कथन कि भारत वर्ष में दूसरे देशों की अपेक्षा सदा ही धर्म पर अधिक जोर दिया गया है,उन्हें एक दम्भपूर्ण उक्ति सी प्रतीत हो सकती है। हम मानते हैं कि दूसरे देशों में किसी कारणों से धर्म पर उतना ज़ोर आज नहीं दिया जाता जितना कि भारतवर्ष में दिया जा रहा है किंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि अन्य देशों की प्रजा भारतवर्ष से कम धार्मिक है। सच तो यह है कि आज भी ईसाई देश में जो 'मिशनरी स्पिरिट' पाई जाती है वह अन्य देशों या धर्मावलंबियों में नहीं पाई जाती। इतिहास के विद्यार्थी जानते हैं कि यूरोप में एक ऐसा युग था जब कि सहस्रों लोगों ने अग्नि में जीते जी जलाया जाना प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार किया किंतु कैथलिक से प्रोटेस्टेंट या प्रोटेस्टेंट से कैथलिक होना स्वीकार नहीं किया। यद्यपि इन प्राण-त्यागी महापुरुषों के सामने स्वधर्म को छोड़कर परधर्म स्वीकार करने का सवाल था किन्तु इनके स्वधर्म और परधर्म में वैसा महदन्तर नहीं था जैसा कि उन धर्मों के बीच में पाया जाता है जिनका कि जन्म भिन्न २ परिस्थितियों, देशकाल या कारणों से होता है। इनमें वैसा ही अन्तर है जैसा कि शैवों और वैष्णवों में, या शिया और सुन्नियों में है। इतिहास से प्रकट है कि रोमन कैथलिक या प्रोटेस्टेंटों ने, एक ही धर्म के अनुयायी होते हुए भी अपने २ मत के लिए उत्साह-पूर्वक प्राण त्याग कर जो धर्म-परायणता प्रकट की वह अन्य देशों में सामूहिक रूप में शायद ही कभी देखने में आई हो। अतएव यह कहना कि भारतवासी अन्य देश-

प्रतीत होती है। ऐसी ही गर्वोक्तियाँ तो साम्प्रदायिक वैमनस्य और अन्तर्राष्ट्रीय मनोमालिन्य पैदा करती हैं।

प्रत्येक देश या धर्म का व्यक्ति अपने देश या धर्म की मुक्त कंठ से प्रशंसा करने के लिये स्वतन्त्र है,पर जिस वक्त वह अपने देश-प्रेम या धर्म-प्रेम से उन्मत्त होकर अपने देश या धर्म को दूसरे देश या धर्म से अपेक्षा कृत श्रेष्ठ कहने में गर्व का अनुभव करने लगता है, वहीं वह दूसरों को मानो चुनौती देता है और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिद्वन्दितायों युद्ध या साम्प्रदायिक संघर्ष का बीज बोता है। अपने देश, धर्म,जातिया कुल को दूसरों से मिलान कर अपेक्षाकृत श्रेष्ठ बताने की मदोन्मत्तभावना में ही अनेकों बुराइयों की जड़ छुपी हुई है। मैं मानता हूं कि हमें अपने देश,धर्म गुरु और माता-पिता को श्रेष्ठ समझ कर उनमें अपूर्व श्रद्धा रखनी चाहिये किंतु हमारा यह दावा करना कि हमारे माता-पिता ही दुनिया के सब लोगों से श्रेष्ठ हैं और हमारा हिंन्दू धर्म, ईसाई या इस्लाम आदि धर्मों से अच्छा है क्या हमारा अन्य लोगों के साथ संघर्ष न करावेगा? हमारी तो ऐसी कुछ आदत पड़ी है कि जब तक हम किसी चीज को सबसे अच्छी न कह सकें अथवा जब तक हम अपनी ही वस्तु को सबसे अच्छी न कहलें तबतक हमारा जी नहीं भरता और न उस वस्तु के प्रति हमारे हृदय में पूर्ण श्रद्धा ही उत्पन्न होती है। शायद इसी कारण उस धर्म के प्रति जिसे कि हम सबसे अच्छा नहीं समझते अथवा जिसे एक दम अपने धर्म से अपेक्षाकृत हीन समझते हैं समुचित श्रद्धा नहीं रखना चाहते और न उसके प्रति दूसरों की पूर्ण श्रद्धा को ही सहन कर सकते हैं और शायद इसी कारण हम दूसरों को काफिर यवन या मलेच्छ कहते हैं।

यद्यपि तुलनात्मक समालोचना एक विशेष अवस्था में विशेष सीमा तक उपयुक्त है किंतु आज यह प्रवृत्ति लोगों में इतनी अधिक बढ़ गई

नदी की बाढ़ के समान जब यह प्रवृत्ति बढ़ चलती है तब इसे रोकना बड़ा मुश्किल हो जाता है अतएव हमें यह समझ लेना चाहिये कि तुलनाएं अरुचि कर और द्वेषात्मक होती हैं। तुलना करने की ही प्रवृत्ति के द्वारा अनेकों सम्प्रदायवादी धार्मिक संस्थाएं और स्वार्थी लोग हममें छुटाई बड़ाई और भिन्नता का भाव बढ़ाकर हमारी लड़ाकू अन्तःशक्तियों को उत्तेजित कर सकते हैं और इस तरह हमें युद्ध के मोर्चे में भी खड़ा कर सकते हैं। आखिर हिटलर ने भी तो जर्मनों की इस प्रवृत्ति को ही उकसाया था।

इतिहास कहता है कि जब तक यूरोप में 'रिनेसां' (*Renaissance*) की लहर नहीं दौड़ी तब तक यूरोप में धर्म पुरोहितों का ही अधिक बोलबाला रहा और सारे का सारा देश अज्ञानान्धकार में डूबा रहा। वह युग कला और विज्ञान की उन्नति में बाधक था, यहाँ तक कि सत्य के जिज्ञासुओं को धर्म-द्रोही और शैतान का प्रतिनिधि कह कर अनेकों प्रकार से पीड़ित किया जाता था। कारण यह था कि धर्म-शास्त्रों में कथित बातें उनके अन्वेषणों से मेल नहीं खाती थीं। दुनियाँ को रुपये जैसी चपटी न कह कर नारंगी जैसी गोल कहना शैतान की प्रेरणा समझा जाता था। अतएव दिनों दिन सत्यभक्तों के बलिदानों से लोगों के हृदय में एक क्रांति पैदा होने लगी, जिसके कारण लोगों ने अन्ध-श्रद्धा को तिलांजलि देदी और सभी मसलों पर स्वतंत्र रूप से विचार करना आरम्भ किया। उन लोगों ने धीरे धीरे पोप द्वारा नियंत्रित धर्म-रूपी जुए को उतार फेंका और वे अपनी अपनी विचार-पद्धति पर चलने के लिये स्वतंत्र हो गए। और परिणाम यह हुआ कि कुछ ही सदियों में यूरोप एक समृद्ध महा द्वीप होगया। ज्यों ज्यों वहाँ के लोगों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण बढ़ता गया और इसके फल-स्वरूप अनुपात की दृष्टि से उनका धार्मिक दृष्टिकोण घटता गया त्यों त्यों वहां भौतिक उन्नति प्रबल वेग से होती गई। इस तरह यूरोप ने आगे चलकर अपने शरीर को बचाने की कोशिश में अपनी आत्मा को खो दिया और हम कह सकते हैं कि द्वितीय विश्व-युद्ध इस भौतिक दृष्टि-कोण का ही परिणाम था। यदि यूरोप का दृष्टि-कोण समन्वयात्मक होता अर्थात् यदि वह धार्मिक और वैज्ञानिक दोनों दृष्टि-कोणों को ध्यान में रख व्यवहार करने की चेष्टा करता तो ऐसी नौबत बहुत मुमकिन है कि न आती। जीवन के इन दोनों दृष्टि-कोणों में से कोई भी अकेले ही परिपूर्ण नहीं है क्यों कि ये एक दूसरे के परिपूरक हैं। किन्तु मनुष्य समन्वयात्मक दृष्टिकोण को दृष्टि में बहुत कम रख सकता है क्यों कि उसके मन की प्रवृत्ति जड़वत् है। जिस तरह जड़ पदार्थ किसी एक दिशा में संचालित किए जाने पर उस ओर से स्वेच्छा पूर्वक विरत नहीं हो सकता उसी प्रकार मन भी एक बार जिस दिशा में चल पड़ता है उस दिशा में चलते जाना उसके लिये स्वाभाविक हो जाता है और एतदर्थ हमारे मस्तिष्क की रचना से भी उसे सहायता मिलती है। अतएव मनुष्य का मन जिस दिशा में प्रवृत्त हो जाता है उससे निवृत्त होने की शक्ति प्रायः उसमें नहीं रहती। इसी सिद्धान्त के अनुसार यूरोपवासियों का दृष्टिकोण दिनों दिन भौतिक होता चला गया उनकी धर्म-भावना विलुप्त-प्रायः होती गई और इस तरह उनकी विचार-पद्धति में संतुलन जाता रहा।

इसके ठीक विपरीत हम देख रहे हैं कि जहां यूरोप वालियों का दृष्टिकोण आधुनिक समय में वैज्ञानिक अधिक है वहाँ हमारे दृष्टिकोण में धार्मिकता की प्रधानता है। हममें और उनमें समानता इसी बात में है कि जिस तरह उनका दृष्टिकोण एकांगी है उसी तरह हमारा भी। वे प्रत्येक बात को सिद्ध करने के लिये जहां वैज्ञानिक विचार-पद्धति का आश्रय लेते हैं वहां हम अनेक बातों को शास्त्रों का रेखागणित के प्रमेयों की तरह प्रमाण देकर सिद्ध करना चाहते हैं अर्थात् जहाँ उनके लिये प्रत्यक्ष सत्य ही प्रमाण है वहां हमारे लिए आप्त-वाक्य ही प्रमाण हैं। हमारी बात का समर्थन

करने वाली किसी शास्त्र में लिखी हुई कोई बात मिली नहीं कि हम आर्क मिन्डीज़ की तरह ही "पा गया! पा गया' कहकर चिल्लाने लगे। यदि मुझे चातुर्वर्ण्य के ईश्वर सृष्ट होने में संदेह हो यदि मुझे पुनर्जन्म के अस्तित्व में संदेह हो, यदि मैं एक सहस्र युगों का ब्रह्मा का एक दिन न मानता होऊं तो मुझे गीता या वैसी ही अन्य प्रामाणिक मानी जाने वाले पुस्तक का प्रमाण दिया जावेगा और यदि मैं कहीं यह कह दूं कि भले ही मैं हिंदू हूं पर मैं गीता, वेद, योग-वासिष्ठ ब्रह्म-सूत्र आदि की प्रामाणिकता स्वीकार नहीं करता, तब तो मुझे सीधे नरक में ही ढकेल दिया जावेगा, क्यों कि मैं इन पर विश्वास लाये बिना आध्यात्मिक उन्नति कर ही नहीं सकता।

हमने जो विचार-सरणि निर्माण की है उसका आधार धार्मिक श्रद्धा या विश्वास है। हमारा आजकल का साहित्य भी इसी तरह की बातों से भरा पड़ा है। जिस ग्रंथ में या लेख में पूर्वजों के जितने अधिक प्रमाण हों वह उतनी ही अधिक प्रामाणिक मानी जाती है। व्यक्तिगत तौर पर तो मैं इसी प्रमाण-प्रियता के ही कारण भारत-वर्ष धर्म-प्रधान देश मानता हूं। इसलिये पाश्चात्य जीवन में जहां अत्यन्त स्वार्थमयी क्रियाशीलता के कारण संघर्ष होने का खतरा है वहां हमारे जीवन में पुरानी विचार-सरणि पर कदम व कदम चलना न छोड़ सकने पर निष्क्रियता से उत्पन्न श्मशान जैसी शांति होने की आशंका है। अतएव हमें पश्चिम की भूल से शिक्षा लेनी चाहिये और अपने धार्मिक दृष्टिकोण को बनाए रखते हुए उसका वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संयोगकर सुन्दर समन्वय करना चाहिये।

विचारवान् वे हैं जो नाशवान भौतिक वस्तुओं को बटोरने की अपेक्षा, आत्मिक समृद्धि का संचय करते हैं।

\+ \+ \+

स्वामी दयानंद का गायत्री प्रेम

स्वामी दयानन्द गायत्री के प्रति अनन्यश्रद्धा रखते थे। उनके गुरु श्री विरजानंद गायत्री के अनन्य भक्त थे। और नियमित रूप से गायत्री का जप करते थे। "श्रीमद्दयानंद प्रकाश श्री स्वामी दयानन्द के जीवन चरित्र की प्रामाणिक पुस्तक है। उसमें से कुछ ऐसे उद्धरण नीचे दिये जाते हैं जिनसे श्री स्वामीजी के गायत्री प्रेम का पता चल सकता है।

"गवालियर महाराज को स्वामी जी ने सलाह दी की भागवत सप्ताह की बजाय गायत्री पुरश्चरण किया जाय।"

"मुलतान में उपदेश के समय स्वामी जी ने गायत्री मंत्र का उच्चारण किया और कहा कि यह मन्त्र सब श्रेष्ठ है। चारों वेदों का यही मूल गुरु मन्त्र है। सब ऋषि मुनि इसी का जप किया करते थे।"

'फर्रुखाबाद के पण्डितों के प्रश्नों का उत्तर देते हुए स्वामी जी ने कहा—गायत्री जप जो वेदोक्त रीति से करें तो बड़ा अच्छा फल होता है।"

'रियासत जयपुर के इलाके के हीरालाल, कायस्थ से मांस मदिरा छुड़ाकर उसे गायत्री याद कराई। उन दिनों स्वामी जी उपासना की विधि लोगों को संध्या और गायत्री बताते थे।"

"स्वामी जी की आज्ञानुसार अनूप शहर, दानपुर, कर्णवास, अहमदगढ़, रामघाट, जहांगीराबाद से अनुमानतः चालीस के लगभग विद्वान् ब्राह्मण गायत्री का जप करने के लिए बुलाये गये और जप अर्ध शुक्ल पक्ष में पूरा हुआ। तत्पश्चात् स्वामी जी की कुटिया पर हवनकुण्ड बनाया गया, कर्मकाण्डी वेदपाठी ब्राह्मणों को ब्रह्मा होता आदि बना कर यज्ञ हुआ।"

"घोड़लसिंह आदि के यज्ञोपवीत कराये, हवन एक दिन हुआ परन्तु गायत्री का जप दस दिन हुआ।"

आत्म-विकास का प्रथम सोपान

(प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम० ए०)

सत्य की खोज के प्रारंभ में अनेक जिज्ञासु स्वीकृतियों (*Affirmations*) का उचित प्रयोग नहीं कर पाते। बाह्य जगत् की घटनाओं को देख कर वे उन्हीं के अनुसार स्वयं बनते जाते हैं। यह नहीं कि अपनी आन्तरिक मनोदशा के अनुरूप बाह्य वातावरण को बदलते जाँय।

दृढ़ निश्चयी साधक वही है, जो अपनी मनोदशा के अनुकूल क्रमशः बाह्य वातावरण को बदलता जाता है। उसकी इच्छाएं तथा अभिलाषाएं फैल कर सुन्दर एवं मनोरम सृष्टि करती हैं। वह जैसा सोचता है, परिस्थितियां वैसी ही बनती जाती हैं। वह जिस वस्तु, तत्त्व, या सत्य का अनुभव या प्राप्ति करना चाहता है, उसे अपनी आन्तरिक सृष्टि में स्वीकार करता है, जिसे नहीं चाहता, उसे अस्वीकार करता है। इन स्वीकृतियों (*Affirmations*) और अस्वीकृतियों (*Denials*) द्वारा वह क्रमशः आध्यात्म पथ पर आगे बढ़ता है।

मुझे स्वयं स्मरण है कि किस प्रकार मैंने कौन २ सी स्वीकृति से कार्य लिया था। मेरा शरीर ऐसा रुग्ण था कि पुनः स्वस्थ होने की बहुत कम आशा रह गई थी। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा था, जैसे ईश्वर भी मुझे विस्मृत कर रहे हों। मेरी प्रार्थना भी छूट सी गई थी।

एक दिन अचानक मुझे स्वीकृति के महान् सत्य का ज्ञान हुआ। हम जिस तत्त्व को प्राप्त करना चाहते हैं, यदि उसे मिला हुआ समझ कर चलें, तो मन तथा शरीर में अद्भुत शक्ति का संचार होता है। मेरी प्रथम स्वीकृति यह थी—

"मैं आन्तरिक प्रसन्नता और दैवी आह्लाद से परिपूर्ण हूं। मेरा निकट सम्बन्ध दैवी स्वास्थ्य, दैवी तत्त्व, दैवी जीवन से है। परमेश्वर का स्वास्थ्यप्रद, कल्याणकारी, अकलुष, सञ्जीवता प्रदान करने वाला तत्त्व मेरे रोम रोम में प्रवाहित हो रहा है। मेरा शरीर, मन, आत्मा, कण कण दैवी जीवन से ओत प्रोत हो रहा है।"

एक आध्यात्म वेत्ता का विचार है—"जब तक तुम्हें कोई भी स्वीकृति पूर्ण रूप से अभिभूत न कर ले, तुम उसे पूरी तौर से हृदयंगम न कर लो, तब तक उसी पर विचार करो, उस पर मनन करो, उसी में निरन्तर रमण करते रहो।

यही उस दिन हुआ। मैं लगातार इन्हीं शब्दों पर विचार करता रहा। मैंने उन्हें याद करने की चेष्टा न की, बल्कि इन शब्दों से अपने आन्तरिक जगत् का रोम २ रंग लिया, मस्तिष्क ने उन्हें दृढ़ता से जकड़ लिया। मैं इन शब्दों को गाता रहा। "मैं दैवी प्रसन्नता से परिपूर्ण हूं। मैं स्वस्थ हूं, दैवी कल्याणकारी तत्त्व तमाम रोग शोक मुझ में से निकाल रहा है।"—यह परमौषधि निरन्तर मेरे रोगों को दूर करती रही। सत्य मुझे उत्तमोत्तम दवाई मिली।

"मैं दैवी स्वास्थ्य, प्रसन्नता, आह्लाद से युक्त हूं।"—यह बात पुनः पुनः दोहराना, बार बार उन्हें विविध रूप में उच्चारण करना हास्यास्पद लगता था। प्रारंभ में मन ने इन्हें स्वीकार न किया। पर बार बार उन्हीं में रमण करने से एक दिन मुझे आन्तरिक आह्लाद का आभास मिला। मैं धीरे धीरे स्वस्थ और प्रसन्न होने लगा। मैंने कुछ और स्वीकृतियां इस प्रकार बनाई—

"मैं आनन्द हूं, सदैव आनन्द में ही रमण करता हूं"

"मैं स्वस्थ हूं सदैव स्वास्थ्य, सुख, प्रसन्नता से ही मेरा सम्बन्ध है।"

"मैं प्रेम हूं, समस्त जीव जन्तु प्राणी मात्र से मैं प्रेम करता हूं। मेरा कोई शत्रु नहीं। सभी मित्र एवं हितैषी हैं।"

पुनः पुनः इन्हीं संकेतों में मग्न रहने लगा। मेरे आन्तरिक मन ने उन्हें ग्रहण कर लिया। मैंने वैद्य का आश्रय छोड़ा अधिकाधिक दृढ़ विश्वास से उक्त स्वीकृति को पकड़ता गया।

उस विश्वास में कैसा अद्भुत आनन्द था। मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता। मेरी प्रार्थना में स्वीकृतियां होतीं। मेरा शरीर निर्विकार होगया।

यह जीवन-परिवर्तन का एक पहलू था। दूसरा पहलू 'अस्वीकृतियां' था। जिन चीज़ों अवस्थाओं परिस्थितियों को मैं नहीं चाहता था, उन्हें मैंने, मेरे अन्तर ने, अस्वीकार किया। मैंने दृढ़ता से कहा—

'मैं बीमार नहीं हूं। मुझमें किसी प्रकार की कमज़ोरी नहीं। मेरे शरीर में कोई भी विकार नहीं ठहर सकता। मुझमें ज़रा भी निर्बलता नहीं है।'

प्रारंभ में अन्तर्मन ने " हीलाहवाला किया किन्तु दीर्घ कालीन अभ्यास से मनोदशा बदलने लगी। ठीक अवस्था में विकास होते २ अब वह दशा है कि अभद्र बातें मन स्वीकार ही नहीं करता। अपने विषय में कोई भी निर्बलता की बात मैं स्वीकार नहीं करता। मैं अपने विषय में शुभ ही स्वीकृत करता हूं। अशुभ को दृढ़ता से अस्वीकृत करता हूं। अपने व्यक्तित्व के विषय में कोई भी अभद्र बात मुझे रुचिकर नहीं। सत्य की अन्वेषणा में यह मेरा प्रथम अनुभव था। अब मुझे ज्ञात होता है कि अपने व्यक्तित्व के विषय में दूसरे व्यक्तियों की अभद्र स्वीकृतियां कैसा अन्धेर करती है।

अनेक स्वार्थी व्यक्ति कमज़ोरी के संकेत दुर्बल मन में प्रविष्ट करा देते हैं जिनसे मनुष्य हीनत्व की भावना का शिकार होकर अपने विषय में ऊलजलूल बातें मान बैठता है और अपना सत्या-नाश कर लेता है।

हम उन्हीं बातों या संकेतों को स्वीकार करें, जो हमारे लाभ की हैं। अहित कर संकेतों को अस्वीकार कर देने में ही भला है।

———

घंटों निरर्थक बकबास करने से एक क्षण का वह वचन अच्छा, जिससे किसी को धैर्य, प्रोत्साहन या कल्याण की प्राप्ति हो।　+　+

आप भी समाधि लगा सकते हैं

———

योग साधन में समाधि की अवस्था को पर-मानंद मयी माना गया है। चित्त जब जिस स्थान पर रुक ने लगता है तो उस किसी भी विषय में आनंद आने लगता है। यदि चित्त वृत्तियों का निरोध होने के पश्चात् वे निरुद्ध वृत्तियां आत्मा परमात्मा में, लगती हैं तब तो और भी अधिक आनन्द का अनुभव होता है। इसे ही परमानंद कहते हैं। योग की सफलता इस समाधि रूपी परमानंद से आंकी जाती है।

मोटे तौर से समझा जाता है कि वेहोश हो जाने जैसी दशा को समाधि कहते हैं। यदि ऐसा ही होता तो क्लोरोफार्म सूंघ कर या शराब आदि नशीली चीजों को पीकर आसानी से वेहोश हुआ जासकता था और समाधि सुख भोगा जा सकता था। पर वास्तविक बात ऐसी नहीं है। शरीर भाव का होश छोड़कर आत्म भाव में जागृत होजाना ही समाधि है। जैसे दिन में दिन का काम कांज सत्य मालूम पड़ता है और रात को सपने सच्चे लगते हैं। दिन में सपने झूठे हैं और स्वप्न में दिन का जीवन निष्प्रयोजन है। इसी प्रकार सांसारिक आदमियों की दृष्टि में समाधि एक प्रकार की वेहोशी है। समाधि अवस्था में गया हुआ आत्मज्ञानी दुनियां वालों को मोह मदिरा पीकर उन्मत्त विचरता हुआ देखता है। यह दृष्टिकोण की विपरीतता ही 'वेहोशी' है। अन्यथा वेहोशी का और कोई कारण नहीं। गीता में इसी तथ्य को इस प्रकार कहा है कि—'जो साधारण प्राणियों के लिए रात है संयमी के लिए दिन है। उसमें वह जागता है और जिसमें जीव जगा करते हैं उसमें मुनि सोया करता है।' तात्पर्य यह कि आत्मज्ञानी के लिए साधारण लोग वेहोश हैं और साधारण लोगों के लिए आत्मज्ञानी वेहोश है। ध्यान की तन्मयता के कारण शरीराध्यास का ध्यान न रहना यह दूसरी

बात है और बेहोश या मूर्च्छित होजाना बिलकुल प्रथक बात है।

महर्षि पतिञ्जलि ने अपने योग दर्शन में चित्त वृत्तियों के निरोध को योग कहा है और बताया है कि यह निरोध बलवान होने से समाधि अवस्था प्राप्त होती है। "तस्यापि निरोधे सर्वनिधन्निर्वीज समाधिः" अर्थात् उसके (चित्त के) निरोध से निर्वीज समाधि होती है। इस चित्त निरोध के लिए प्रत्याहार, धारणा, ध्यान आदि उपाय हैं जिनके द्वारा चित्त को अमुक कल्पनाओं से हटा कर अमुक कल्पनाओं में लगाया जाता है। योगी लोग स्थिर होकर एकान्त में एक आसन से बैठते हैं और आंखें मूंद कर ध्यान लगाते या किन्हीं भावनाओं पर चित्त जमाते हैं। यह कल्पना योग हुआ। उस मार्ग में अनेकों प्रकार की साधनायें होती हैं।

केवल कल्पना योग की साधनाओं द्वारा समाधि प्राप्त होती हो सो बात नहीं है। क्रिया योग में भी ऐसी साधनायें मौजूद हैं। जिन्हें करते हुए काम काजी मनुष्य भी चित्त को एकाग्र कर सकता है और समाधि का आनंद पा सकता है। योगदर्शन के साधन पाद में महर्षि पातञ्जलि ने तप, स्वाध्याय, और ईश्वर प्रणिधान को क्रियायोग बताया है। (तपस्स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः) और इस क्रिया योग का फल लिखते हुए उन्होंने कहा है कि-इस क्रियायोग से क्लेश तथा व्यथायें दूर होकर समाधि प्राप्त होती है। (समाधि भावनार्थः क्लेश तनू-करणार्थञ्च) इस प्रकार प्रकट है कि क्रियायोग से भी समाधि की सिद्धि होसकती है।

सत्कार्य के लिए कष्ट सहन करका तप कहलाता है। आत्मोन्नति के लिए, लोक कल्याण के लिए, परमार्थ के लिए जो परिश्रम किया जाता है, कष्ट सहन किया जाता है वह तपश्चर्या का प्रतीक है। शुभ कर्म के मार्ग में कठिनाइयों को न गिनना तपस्या का तत्व है। यह तपश्चर्या मनुष्य को समाधि की ओर लेजाती है।

स्वाध्याय का अर्थ है-स्व + अध्याय, अध्ययन। अपने आपको पढ़ना। आत्म चिन्तन, आत्म-निरीक्षण, आत्मशोधन, आत्मनिर्माण यह स्वाध्याय के चार अंग हैं। इन चारों की पूर्ति के लिए सद्ग्रन्थों का पठन श्रवण तथा सत्पुरुषों का सत्संग भी उपयोगी है। वैसे तो स्वाध्याय बिना पढ़े मनुष्य भी, बिलकुल अकेले रह कर भी कर सकते हैं। मेरी आत्मा वस्तुतः क्या है? इस जीवन का सच्चा प्रयोजन क्या है? मेरे विचार एवं कार्य में उचित तथा अनुचित का कितना कितना अंश है? किन दोषों को छोड़ना और किन गुणों को बढ़ाना मेरे लिए आवश्यक है? अपनी भीतरी तथा बाहरी दुनियां को सुव्य-वस्थित किन उपायों से बनाया जाय? अपने सत् निश्चयों को कार्य रूप में परिणत किस प्रकार किया जाय? इन प्रश्नों पर निष्पक्षता, गंभीरता, दृढ़ता एवं सचाई से विचार करना और उन विचारों को चरितार्थ करने के लिए कार्यक्रम बनाना यही स्वाध्याय है। स्वाध्यायी मनुष्य को आत्मा का दर्शन होकर रहता है और वह समाधि सुख का रसास्वादन करता है।

ईश्वर प्रणिधान—ईश्वर परायणता को कहते हैं। विश्वात्मा, समस्त प्राणियों की सम्मिलित आत्मा, परमात्मा का आराधन यह है कि अपने स्वार्थ को परमार्थ में मिला दिया जाय। जिसका स्वार्थ, परमार्थ मय है अथवा जिसे परमार्थ में ही स्वार्थ दीखता है वह सच्चा ईश्वर प्रणिधानी है। प्राणिमात्र चर अचर में प्रभु के दर्शन करना, साकार पूजा है। प्रकृति से परे, अजर, अमर, अविनाशी, निष्पाप आत्मा में स्थित होना, पांच भूतों की संवेदना से ऊपर उठना निराकार पूजा है। चाहे जिस प्रकार भी कीजिए आत्मा को उन्नत, विकसित, महान, बना देना, परम बना देना, परम आत्मा, परमात्मा की प्राप्ति है। वह प्रत्यक्ष समाधि ही तो है। इस प्रकार महर्षि पातञ्जलि के अनुसार हर व्यक्ति साधारण जीवन व्यतीत करते हुए भी समाधिस्थ होसकता है।

सम्मिलित कुटुम्ब के लाभ।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, उसे दूसरों के साथ साथ रहना स्वभावतः पसंद है। जेलखाने में जाकर भी कुछ अपराध करने वालों को कुछ समय "एकान्तवास" की सजा दी जाती है। अकेला रहने पर कैदी बड़ा कष्ट अनुभव करता है और उस कष्ट के डर से फिर वैसा नहीं करता। हम देखते हैं मेले ठेले, उत्सव, समारोह देखने के लिए स्त्री पुरुष, बाल वृद्ध, सभी उत्सुक रहते हैं। हम देखते हैं कि देहाती लोग देहात छोड़ छोड़ कर शहर में बसते जारहे हैं। इन सब बातों से पता चलता है कि अधिक लोगों के समूह के साथ रहना मनुष्य को स्वभावतः प्रिय है। सामूहिक प्रार्थना, संकीर्तन, संगीत, सेना, बरात, जुलूस, उत्सव, प्रीतिभोज आदि अधिक व्यक्तियों के सम्मिलित कार्य में साथ रहने की इच्छा लोगों के मन में स्वयमेव उठा करती है। इस जन्म जात प्रकृति से प्रेरित होकर ही मानव जाति सामूहिक रूप से रहने के लिए तैयार हुई। दूर दूर झोंपड़े बनाने की बजाय पास पास घर बनाकर ग्राम या नगर बसाने की प्रणाली को इसीलिए स्वीकार किया गया। पास पास रहने, साथ साथ रहने का सिद्धान्त मानव प्रकृति के सर्वथा अनुकूल है।

इसी प्रकृति प्रेरणा से प्रेरित होकर सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा का प्रचलन हुआ है। एक साथ मिलजुल कर रहने से कुटुम्ब के हर एक सदस्य का व्यक्तिगत लाभ भी है और सामूहिक लाभ भी। आर्थिक दृष्टि से, शारीरिक दृष्टि से, मानसिक दृष्टि से, सामाजिक दृष्टि से, धार्मिक दृष्टि से, आध्यात्मिक दृष्टि से सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा लाभ दायक ही है।

आर्थिक दृष्टि से विचार कीजिए तो धन की किफायत होती है और सम्पन्नता बढ़ती है। अलग अलग रहने पर अलग अलग चूल्हे जलते हैं, दीपक जलते हैं, बुहारी, कंघे, शीशे, चौके के बर्तन, आदि की अलग अलग अवश्यकता होती है, पर साथ रहने से एक से ही काम चल जाता है। चार भाई एक मकान में रहें तो एक मकान में काम चल सकता है पर अलग रहने पर चार मकान चाहिए। चार कमरे, चार बैठक, चार जोड़ी फर्नीचर, फर्स तथा तस्वीरें चाहिए। अतिथियों के लिए फालतू पलंग विस्तर फिर सबको अलग अलग रखने पड़ते हैं। कहार, महतर, रसोइया, चौकीदार आदि का खर्च भी बढ़जाता है। चार भाइयों के सम्मिलित रहने में यदि दोसौ रुपया मसिक खर्च होता था तो अलग होजाने पर चार सौ रुपया मासिक जरूर होजायगा। कितनी ही फिजूल खर्वी जो सम्मिलित होने पर रुकी रहती थी, अलग होने पर बढ़ने लगती है। "जो मैं चाहता हूं वह सबको भी होना चाहिए—सब के लिए वह व्यवस्था करने में बहुत खर्च पड़ेगा, केवल मेरे लिए ही वह वस्तु होने पर दूसरों को बुरालगेगा" यह सोचकर घर के सब लोग अपनी आवश्यकताएं कम रखते हैं पर यह नियंत्रण उठते ही खुले हाथों खर्च होने लगता है।

इस प्रकार जहां खर्च में किफायत होती है वहां सम्पन्नता बढ़ती है। किफायत वाले रुपये बचते हैं। सम्मिलित श्रम में लाभ भी अधिक होता है। घर के विश्वस्त आदमी मिलकर कारोबार में जितना लाभ कर सकते हैं उतना नौकरों द्वारा नहीं होसकता। सब की कमाई इकट्ठी जमा होने से पूंजी बढ़ती है। अर्थ शास्त्र का अकाट्य नियम है, "अधिक पूंजी से अधिक लाभ" जैसे किसी काम में एक हजार रुपये की पूंजी लगाई जाती है तो दस प्रतिशत लाभ होता है पर यदि उसी में दश हजार की पूंजी लगादी जाय तो पन्द्रह प्रतिशत लाभ होने लगेगा। सबकी कमाई एक जगह जमा होने से परिवार की सम्पन्नता निश्चित रूप से बढ़ जाती है।

मानसिक दृष्टि से विचार कीजिए तो एक साथ रहने में मनोरंजन रहता है, तबीयत लगी

रहती, चित्त ऊबता नहीं बच्चों की तोतली बोली, माता का वात्सल्य, भाई बहिनों का सौहार्द, पत्नी का प्रेम, जैसे विविध भावों का एक रुचिकर थाल सामने आता है जिसे खाकर मानसिक क्षुधा तृप्त होजाती है। पत्नी को लेकर अलग हो जाने वाले लोग इन षट्रस मानसिक व्यंजनों से वंचित रह जाते हैं। छोटे बच्चों का खेलना, बड़े बच्चों का पढ़ना, लड़कियां का काढना बुनना, स्त्रियों का गाना बजाना, गृह कार्य करना, गृहपति का आगन्तुकों से वार्तालाप, वृद्धाओं की धर्म-चर्चा एवं कहानियां, किसी में प्रेम किसी में चखचख यह सब मिलकर अपना कुटुम्ब एक अच्छा मनोरंजन गृह बन जाता है।

आपत्ति से सुरक्षा के लिए सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा एक बहुत बड़ी गारंटी हैं। स्त्रियों के शील सदाचार की रक्षा के लिए यह एक ढाल के समान है। बीमार पड़ जाने पर इतने आदमी तीमारदारी के लिए तैयार रहते हैं और रोग मुक्ति का उपाय करते हैं। वृद्धावस्था आराम से कट जाने का संतोष रहता है। अपाहिज या अशक्त होजाने पर भी इस आश्रय का विश्वास रहता है। मृत्यु होजाने पर स्त्री बच्चों का पालन पोषण होजाने की निश्चिन्तता रहती हैं। विधवाओं का जीवन ऐसे भरे पूरे घरों में आसानी से कट जाता है। क्या यह सब सुविधाएं प्रथक रहने की दशा में संभव हैं?

बच्चे साथ साथ खेलते कूदते हैं, हंसते बात करते हैं, खाते पीते हैं, उनका शारीरिक और बौद्धिक स्वास्थ्य दिन दिन बढ़ता है। परिवार का हर सदस्य अपने से बड़े से कुछ न कुछ सीखता है। यह कारण है कि भरे पूरे कुटुम्बों की अच्छे खानदान की लड़कियाँ प्रायः चतुर सुलक्षणी, सभ्य और व्यवहार कुशल निकलती हैं। मां बाप की अकेली संतान, खासतौर से लड़की यदि बड़े परिवार से प्रथक प्रायः अकेली मां बाप के साथ रहती है तो वह गृह संचालन में प्रायः बहुत ही कम सफल होती है। नयी उम्र के पतिपत्नी अकेले रहने की दशा में फिजूल खर्ची असंयम आदि दोषों में फंस जाते हैं और उनकी दिन चर्या में वैसी ही नीरसता आजाती है जैसी केवल मिठाई या केवल नमक खाने पर आती है।

सम्मिलित कुटुम्ब सामाजिक दृष्टि से अधिक प्रतिष्ठित माना जाता है। चार आदमियों की सम्मिलित जन शक्ति को देखकर दुश्मन डरते हैं, मित्र आकर्षित होते हैं। प्रतिष्ठा बढ़ती है। सम्मिलित शक्ति के स्वामित्व का बल घर के हर सदस्य को रहता है। हर सदस्य समझता है कि किसी ने मेरा अपमान किया तो समस्त परिवार की जनशक्ति उससे बदला चुकालेगी। बीस आदमियों के कुटुम्ब की सब शक्ति का अन्दाज मान लीजिए एक मन है तो वैसे प्रथक प्रथक हर एक का बल दो दो सेर हुआ पर समाज में हर सदस्य का बल एक एक मन समझा जाता है इस प्रकार हर एक को बीस गुनी शक्ति का लाभ अनायास ही मिल जाता है। प्रथक रहने पर तो मनुष्य की जो वास्तविक शक्ति होती है उससे भी कम जंचने लगती है। दूसरे आदमी समझते हैं कि "अपनी निजी आवश्यकताओं से इसके पास समय, बल तथा धन कम ही बचता होगा। इसके द्वारा वह किसी को हानिलाभ न पहुंचा सकेगा।" इस मान्यता के आधार पर वह व्यक्ति वास्तविक स्थिति से भी छोटा समझा जाने लगता है। ऐसी स्थिति में देश या समाज की सेवा के लिए, कोई बड़ा त्याग करने के लिए भी वह व्यक्ति तत्पर नहीं होपाता यदि हो भी उसे स्वयं तो बड़ी चिन्ता रहती है और उसके आश्रितों की कठिनाई का ठिकाना नहीं रहता।

धार्मिक दृष्टि से—माता, पिता, बड़े भाई, सास, ननद, जिठानी आदि के प्रति जो कर्तव्य है वह सम्मिलित कुटुम्ब में रह कर ही निभाया जासकता है। बड़े का सत्कार, सेवा, आदर तभी तो होसकता है जब उनके साथ रहें। बड़े भी अपने अनुभवों का लाभ छोटों को उसी दशा में देसकते हैं। जिन बड़ों ने एक बालक को गोदी

में खिलाया और एक युग तक बड़ी बड़ी आशाएं रखीं, वह समर्थ होते ही अलग होजाता है तो उन्हें आघात लगता है, यह एक कृतघ्नता है। ऐसी कृतघ्नता को अपनाने पर मनुष्य अपने सहज धर्म लाभ से, कर्तव्य पालने से वंचित रह जाता है। परिवार को अपना धर्म क्षेत्र, कर्म क्षेत्र मानकर जो उसके द्वारा प्रभु पूजा करते हैं वे आत्म लाभ कर सकते है। हम अपनी "ग्रहस्थ योग" पुस्तक में सविस्तार बता चुके हैं कि कुटुम्ब को परमात्मा का सौंपा हुआ एक बगीचा मान कर उसकी रखवाली, उन्नति तथा समृद्धि के लिए जो व्यक्ति एक ईमानदार माली की तरह अपना कर्तव्य पालन करते हैं वे एक प्रकार की योग साधना ही करते हैं और योग के फल को प्राप्त करते हैं। अपने निजी सीमित स्वार्थ की दृष्टि को विस्तृत करके अब मनुष्य उसे स्त्री, पुत्र, पौत्र, परिजन आदि में फैलाता है, तब वह अहंभाव का विस्तार द्रुतगति से होने लगता है। फिर ग्राम, देश, विश्व से बढ़कर वसुधैव कुटुम्बकम् की उसकी दृष्टि होजाती है और सब कुछ अपना—आत्मा का, परमात्मा का दीखने लगता है, यही जीवन मुक्ति है।

इस प्रकार सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा में हर प्रकार लाभ ही लाभ हैं। पर खेद के साथ हमें स्वीकार करना पड़ता है आज अधिकांश सम्मिलित कुटुम्ब कलह और मनोमालिन्य के घर बने हुए हैं—इसके कारण और निवारण पर अगले अंक में विचार करेंगे।

सहस्रों बड़े बड़े ग्रन्थ पढ़ने से एक ऐसा सूत्र पढ़ना अच्छा जिससे तत्व की प्राप्ति होती हो।

\+ + +

एक दिन का सदाचार युक्त और ज्ञानपूर्वक जीना सौवर्ष के असंयमित और अज्ञान मय जीवन से अच्छा।

\+ + +

आम्र-कल्प।

(श्री डा० विट्ठलदास मोदी, गोरखपुर)

साधारणतः सभी लोग कल्पके माने शरीर बदलना ही समझते हैं। जब शरीर बदल गया तब रोग कहां? पुराने रोग तो पुराने चोले के साथ ही चले जाते हैं, कल्पसे मिले नये चोले में रोग का स्थान कहां? किसी रोग के लिए कल्प कीजिए किसी चीज का कल्प कीजिए, माने होते हैं आप अपने रोगको जड़ मूलसे नष्ट करने का अनुष्ठान कर रहे हैं। इसलिए कल्प के अर्थ के साथ ही कुछ कष्ट सहने का, इंद्रियों को वश में करने का एवं कुछ विशेष संयम का भी भान होता है। दूसरे कल्पों में कष्ट की बात हो सकती है, पर आम्र कल्प में कष्ट कहां? वहां तो आनंद ही आनंद है। ठंडे पानी से भरे हुए मिट्टी के नाद में हरे, पीले, रसीले सुमधुर, सुगंधित आम भिगो दिये गये हैं, चार आदमी उसके चारों ओर बैठ जाइये और फिर एक एक आम का रस लीजिए और छक छक कर तृप्त होकर चूसिए, और आपने आम खा लिए तो लीजिए धारोष्ण दूध आ रहा है। इसे भी पीजिए। बस, पूरा हुआ काम। यही कल्प है। इसमें कष्ट का प्रवेश कहां? आम का कल्प करना कुछ दिन देवताओं का भोजन ग्रहण करना है।

आमके कल्प से दुबले मोटे बनते हैं, खुरदरी त्वचा, स्वच्छ सलवण हो आती हैं, अशक्तता जाकर शरीर सुपुष्ट होता है, आंखों में तेज भरता है, दांत साफ हो जाते हैं,एवं कपोलों पर लालिमा छा जाती है, कब्ज चला जाता है और शरीर में उत्साह एवं उमंग का संचार होता है।

पर यह सब होता क्यों है? इसके दो कारण हैं। पहला आम और दूध में क्षारों एवं विटामिनों का आधिक्य, दूसरे आम-दूध की सुपाच्यता अनेक रोग किसी विटामिन अथवा क्षार की कमीके कारण होते हैं और बहुत से रोग

रक्त में अम्लता बढ़ जाने से। आम्र कल्प दोनों ही प्रकार के रोग हरता है। अभावों को मिटाता है एवं रक्त में क्षारों का आधिक्य और अम्लता को दूर करता है। यदि मनुष्य का भोजन संतुलित हो, उसमें उचित मात्रा में श्वेतसार, (गेहूं चावल) प्रोटीन, (दाल दूध) चिकनाई (घी तेल) हो तो आदमी बीमार ही न पड़े। पर जब संतुलित का सवाल न कर अधिकतर रोटी, दाल, चीनी, घी, तेल चरपरे एवं तले पदार्थों पर आदमी रहने लगता है तो उसकी पाचन शक्ति बिगड़ने के साथ रक्त अम्लमय हो जाता है। फलतः कब्ज, अपचके साथ साथ अनेक रोग होते हैं। पर आम्र कल्प में आप केवल आम दूध पर रहने लगते हैं। सारे अप्राकृतिक खाद्यों से आपका पिंड छूट जाता है और आम में यथेष्ट फुजला होने के कारण कब्ज शीघ्र टूटता है और शरीर को नया बनाने, रक्त को बदलने के पथपर लग जाते हैं!

वैज्ञानिकों का कहना है कि श्वेतसार आठ घंटे में पचकर शर्करा बनता है। इसके बाद ही उसका उपयोग हमारा शरीर कर पाता है। वह शर्करा पके आम में स्वाभाविक रूप से रहती है, अतः आम के शरीर में पहुंचते ही शरीर उसका उपयोग करना आरंभ कर देता है, एवं उसे शक्ति मिलने लगती है। वह पाचन शक्ति जो भारी गरिष्ठ चीजें पचाते २ थक गई थी, नाकाबिल हो गई थी, पाचन के भारी काम से छुट्टी पा जाती है और आराम मिलने से धीरे धीरे सशक्त होकर अपनी पूर्व शक्ति प्राप्त करती है। आम्र कल्प से पाचन शक्ति सुधरने का यही सही रहस्य है। और आम के साथ दूध भी तो रहता है। बिना दूध के आम्र यज्ञ की पूर्णाहुति हो ही नहीं सकती। हमारे वैद्य मित्रों की राय है कि बिना दूध के आम का कल्प चल नहीं सकता, पर मेरी वैसी राय नहीं है। मैं अपने रोगियों को पहिले कुछ दिन आम ही खिलाता हूं, फिर उसके बाद दूध शुरू होता है। और दूध तो पूर्ण भोजन है, क्यों जो दूध के सिवा अन्य कोई चीज ग्रहण नहीं कर सकता। अतः वह दूध में शरीर के लिए आवश्यक सभी सामान भरती है। असल में दूध भोजन का मापदंड है। उस भोजन में जिसमें वे सबके सब तत्त्व नहीं हैं जो दूध में होते हैं उसे संतुलित कह ही नहीं सकते। अतः उस संतुलनको ठीक करने के लिए दूध की जरूरत हुआ करती है। दूध की शर्करा एवं चिकनाई सी दूसरी शर्करा एवं चिकनाई मिलना कठिन है। दूध का प्रोटीन भी सर्व श्रेष्ठ एवं हलका माना जाता है। आम में प्रोटीन होता है और चिकनाई नाममात्र को होती है, अतः आम्र कल्प में आमके साथ दूध का मेल मिलाया गया है।

यही कारण है कि आम्र कल्प से प्रायः सभी रोग, विशेषतः पाचन की गडबडी व रक्त में अम्लता से पैदा होनेवाले रोग शीघ्रता से जाते हैं उनमें से कुछ के नाम जिन पर मुझे स्वयं आरोग्य मंदिर गोरखपुर में अनुभव हुआ है— दुर्बलता, रक्ताभाव, स्नायुदौर्बल्य, धातुदौर्बल्य नपुंसकता, पुराना कब्ज, अग्निमांद्य, आरंभिक अवस्था में वाय, अनिद्रा, रक्त चाप की कमी या अधिकता, गठिया, दमा, हृदय की कमजोरी आदि।

आम्र कल्प करें कैसे ?

यदि आप दुर्बल हैं, तो तीन चार दिन, और मोटे हैं तो मुटापे के हिसाब से पाँच सात दिन केवल पानी पीकर रह जायं और रोज सेर डेढ सेर गुनगुने पानी का एनिमा लेते रहें, ताकि पाचन प्रणाली को थोड़ा आराम मिल जाय एवं आंतों से पुराना सड़ा मल निकल जाय। आगे यदि कल्प काल में कब्ज रहे तो आध सेर पानी का एनिमा नित्य लेने में भी कोई हर्ज नहीं है। फिर यदि आपने तीन दिन का उपवास किया है तो पहले दिन खूब पतले रस वाले छोटे छोटे चार चार आम सवेरे, दोपहर और शाम को चूसिए, यदि तीन दिन से अधिक का उपवास किया है तो उपवास की लंबाई के अनुसार पहले दिन में तीन चार एक से चार आमों तक का रस

पाव भर पानी में निचोड़ कर एवं छानकर पीजिए। जो भी आम आप काम में लाइये उन्हें चार घंटे तक पानी में जरूर भिगो दीजिए। दूसरे दिन आम चूसना शुरू कर दीजिए और धीरे धीरे भूख के अनुसार आमों की संख्या बढ़ा लीजिए। तीन चार दिन केवल आम चूसकर ही रहिए, फिर प्रत्येक आहार के साथ पाव पाव भर गाय का दूध लेना शुरू कीजिए। सबेरे शाम कच्चा दूध लेना चाहिए और दोपहर को सबेरे का गरम करके रखा हुआ दूध। इस दूध को भी आम की ही तरह चूसिए, दूध और भी सुपाच्य हो जायगा। धीरे धीरे दूध की मात्रा आध सेर तक बढ़ाई जा सकती है और भूख अधिक लगने पर आम-दूध के दो आहारों के बीच में भी दूध पिया जा सकता है। प्यास लगने पर पानी जरूर पीना ही चाहिए। इतनी ही है आम्र कल्प की विधि।

केवल आम पर तीन चार दिन रह जाने से लाभ यह होगा कि आंतों में पुराने मलकी सड़न से पैदा हुए शत्रु क्रिमियों का नाश हो जायगा एवं मित्र क्रिमियों की संख्या बढ़ेगी, जिससे पाचन एवं निष्कासन क्रिया दुरुस्त होगी एवं यदि वायु होती होगी तो वह शांत होगी। दूध शुरू हो जाने पर यह कार्य उतनी तेजी से नहीं हो पाता। थोड़े दूध में क्रिमिनाशक शक्ति नहीं है। दूसरे दूध का उपयोग भली प्रकार हो सके उसके लिए भी उसे क्रिमिरहित पाचन प्रणाली चाहिए।

कल्पके लिए आम—कल्प के लिये कोई भी आम हो सकता है। नाम गिनाऊं तो संख्या सैकड़ों तक पहुंचेगी, पर एक ही बात याद रखिए—आम मीठे और पतले रसवाले होने चाहिए। ये गुण बीजू आम में ही मिलेंगे। आम डाल के हों तो अच्छा है पाल के आमों से भी काम चलता है। आप कलमी आमका भी कल्प कर सकते हैं, मुझे उसमें कोई एतराज नहीं है, पर आप यह देख लें कि आप कलमी आमके गूदे को इतना चबावें, मुंह में इतना घुलालें कि उसका गूदा आपके मुंह में पतले रस में परिणत होने के बाद ही गले के नीचे उतरे। कलमी आम का खतरा कलमी आम में नहीं, हमारी जल्दी जल्दी खाने की प्रवृत्ति में है।

एक खतरा—आम के अमृतमय स्वाद की प्रशंसा करना व्यर्थ है। उसके विशिष्ट स्वाद के कारण ही लोगों का इसे भूख से अधिक खाने की ओर झुकाव रहता है। यह अनुचित है; आम खाते समय यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि दूध भी पीना है। बीच बीच में दूध की घूंटें भरते रहा जाय हमेशा इतनी ही मात्रामें आम लिये जायं कि दूसरे आहार के समय भूख कसकर लगे। आम्र दूध के दिन में तीन आहारों की बच्चों और जवानों को ही जरूरत होती है, अधेड़ और बूढ़ों के लिए दो आहार काफी हैं। हां, आम्र कल्प के आरंभ में जब दूध न लिया जाय, तब आम चूसने के बाद दूध की जगह पानी पीना चाहिए। आम के पचने में जो सहायता मिलती है, वह इस के जलाधिक्य का फल है, वह जल आम चूसने के बाद पीना चाहिए। यों तो लोग कल्प की अवधि चालीस दिन मानते हैं, पर आम्र कल्प तो लम्बा चलना चाहिए जितने दिन चल सके दो ढाई महीने भी। इससे लाभ ही लाभ है किसी प्रकार की हानि की तो संभावना ही नहीं है। जब कल्प समाप्त करना हो, तो पहले दिन दोपहर को दूध आमकी जगह चोकर समेत आटेकी एक हलकी सी रोटी, कुछ हरी तरकारियां और कुछ आम भी लिये जायं। दो तीन दिन में दोपहर को भूख के अनुसार रोटी सब्जी खाने लग जाना चाहिए। सुविधा हो तो दोपहर को या शामको रोटी सब्जी और दिनमें आम दूध का भोजन महीनों चल सकता है। जो दो तीन सप्ताह से अधिक समय तक आम्र का कल्प न कर पावें वे इस मिश्रित भोजन पर दो तीन सप्ताह जरूर बितावें। एक बार रोटी सब्जी और दूसरी बार आम दूध शुरू कर देने के बाद। आप जब चाहें स्वास्थ्य मय साधारण भोजन पर आ जायं।

———

प्रत्यक्ष फलदायिनी योग की गुप्त शिक्षाएं

इस ज्ञान के आधार पर आप थोड़े ही दिनों में कुछ से कुछ बन सकते हैं।

कितने ही अध्यात्म प्रेमी सज्जन योग की शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं पर कोई क्रम बद्ध निश्चित पाठ्यक्रम या शिक्षा व्यवस्था न मिलने से वे मन मार कर चुप बैठ जाते हैं और इस विज्ञान के महान लाभों से वंचित रह जाते हैं। इस कठिनाई को ध्यान में रख कर, सर्व साधारण की सुविधा के लिए अखण्ड ज्योति कार्यालय ने कुछ पुस्तकें प्रकाशित की हैं, जिनका विवरण नीचे दिया जाता है। यह पुस्तकें बाजारू किताबें नहीं हैं। वरन् जिन्होंने दीर्घकाल तक स्वयं साधनाएं की हैं, भारत वर्ष का कोना कोना जिन्होंने योगियों की तलाश में छाना है, संसार के विविधि देशों और भाषाओं के अध्यात्म शास्त्रों का गंभीर अध्ययन किया है, उनके अनुभवों का निचोड़ है। जो लाभ किसी सुविज्ञ आध्यात्म विद्या के ज्ञाता के पास रह कर प्राप्त किया जासकता है वही लाभ यह पुस्तकें प्राप्त करा सकती हैं।

जीवन की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए, भौतिक और आत्मिक, वाह्य और आन्तरिक समृद्धि एवं सुख शान्ति के लिए जिस शिक्षा और साधना की आवश्यकता होती है, वह सभी इन पुस्तकों में मौजूद है। यह ६६ पुस्तकें योग विद्या के-कर्म कौशल के—६६ पाठ हैं। हर एक पुस्तक का लागत मात्र छै छै आना रखा गया है।

प्रति मास एक सैट की पुस्तकों का पाठ्यक्रम पूरा करना चाहिए। इस प्रकार चार महीने में साधारणतः यह शिक्षा क्रम पूरा होसकता है। कोई बात समझ में न आवे तो जवाबी पत्र भेज कर पूछा जासकता है। चार मास का सम्पूर्ण शिक्षा कोर्स पूरा कर लेने वालों के ज्ञान की अखण्ड ज्योति कार्यालय द्वारा प्रश्न पत्र भेजकर परीक्षा लीजाती है और उत्तीर्ण छात्रों को सुन्दर चित्ताकर्षक प्रमाण पत्र दिया जाता है। प्र[illegible] उत्तीर्ण सज्जन अखंड ज्योति के अन्तरंग स[illegible] समझे जाते हैं और उनकी सम्मति से इस सं[illegible] का कार्य संचालन किया जाता है। ——

आरोग्य शास्त्र का निचोड़——प्रथम मास का पाठ्यक्रम।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, का मूल आरोग्य माना गया है। निरोगता प्राप्त करके ही सिद्धियां प्राप्त होसकती हैं। इसलिए योग के शिक्षार्थियों के लिए आरोग्य विद्या की यह पुस्तकें उपस्थित की जारही हैं। इनके आधार पर खोये हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त किया जा[illegible] है और प्राप्त हुए स्वास्थ्य को सुरक्षित रखा जासकता है। यह पुस्तकें पाठक को एक ऐसा डाक्टर बना देती हैं जो अपना और दूसरों का इलाज सफलता पूर्वक कर सकता है।

१ सूर्य चिकित्सा विज्ञान—सूर्य की प्रचण्ड रोग नाशक शक्ति द्वारा वैज्ञानिक ढंग से कठिन रोगों की चिकित्सा विधि।

२ प्राण चिकित्सा विज्ञान—मनुष्य के अंदर गजब की विद्युत शक्ति है। उसके द्वारा समस्त रोगों का इलाज।

३ स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या—आध्यात्मिक सरल साधनों द्वारा तन्दुरुस्त और खूब सूरत बनने के अद्भुत उपाय।

४ भोग में योग—शीघ्र पतन, स्वप्नदोष, प्रमेह, नपुंसकता आदि रोगोंको योग साधनोंसे दूरकरने और मनचाही स्तम्भन शक्ति प्राप्तकरनेकी गु[illegible]

५ बुद्धि बढ़ाने के उपाय—जो स्मरण [illegible] कर बुद्धिमान बनना चाहते हैं उनके [illegible] पुस्तक कल्पवृक्ष के समान है।

६ आसन और प्राणायाम—इन दोनों [illegible] की विज्ञान सम्मत विवेचना और साध[illegible]

७ तुलसी के अमृतोपम गुण—तुलसी [illegible] हिंदू धर्म के अनुसार पूजनीय माना [illegible] वैज्ञानिकों ने उसमें अमृत के समान [illegible] स्वस्थ्य वर्धक गुण पाये हैं इन गुणों [illegible]

८ महान जागरण—आत्म [illegible]

जीवन की काया पलट करने का मनोविज्ञान शास्त्र सम्मत मार्ग दिखाया गया है।

९ तुम महान हो—अपनी महानताको खोजने प्राप्त करने, बढ़ाने और सुरक्षित रखनेकी वैज्ञानिक प्रणाली।

१० घरेलू चिकित्सा—हर रोग के ऊपर शर्तिया फायदा करने वाले छोटे छोटे नुसखे दिये हैं।

११ बिना औषधि के कायाकल्प—उपवास वस्तिक्रिया तथा प्राकृतिक आहार विहार के द्वारा स्वस्थ, बलवान, फुर्तीला, निरोग और कान्तिवान बनने की विधि व्यवस्था बताई गई है।

१२ पंच तत्वों द्वारा सम्पूर्ण रोगों का निवारण—मिट्टी, पानी, हवा, आग आकाश इन पांचों तत्वों द्वारा हर रोग का इलाज करने की अद्भुत चिकित्सा प्रणाली।

१३ दीर्घ जीवन के रहस्य—संसार के दीर्घ-जीवी मनुष्यों ने लम्बी आयु किस प्रकार, कि इन उपायों से प्राप्त की है। इस पुस्तक में उन अनुभव पूर्ण सिद्धान्तों का विवेचन है।

१४ नेत्र रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा—बिना ओपरेशन के बिना दवा खाये या लगाये, इस पुस्तक में बताये हुए प्राकृतिक उपायों द्वारा, नेत्र रोग दूर हो सकते हैं। ज्योति बढ़ सकती है और चश्मा छूट सकता है।

१५ स्वप्नदोष की मनो वैज्ञानिक चिकित्सा—स्वप्न दोष की जड़ मस्तिष्क में होती है। वह दवाओं से नहीं मन की चिकित्सा करने से दूर हो सकता है जो लोग स्वप्न दोष से दुखी हैं। उनके लिए यह पुस्तक कल्प वृक्ष के समान है।

१६ दूध की आश्चर्य जनक शक्ति—दूध पृथ्वी का अमृत है। इसे विधि पूर्वक सेवन करने से मनुष्य कायाकल्प कर सकता और सब रोगों से छुटकारा पा सकता है।

जीवन विज्ञान की शिक्षा—द्वितिय मास का पाठ्यक्रम

यह सोलह पुस्तकें जीवन की अत्यन्त महत्व पूर्ण समस्यों को सुलझाने वाला ज्ञान आपके संमुख उपस्थित करती हैं। इस विज्ञान को भली प्रकार समझ कर हृदयंगम कर लेने से जीवन यात्रा की अधिकांश कठिनाइयां दूर होजाती है और ऐसे रहस्य मालूम होजाते हैं जिनके आधार पर श्री, समृद्धि, कीर्ति, उन्नति, प्रसन्नता तथा सुख शान्ति का द्वार खुल जाता है, इन्हें पढ़ने से पर पाठक को ऐसा लगता है मानों किसी अज्ञात् गुप्त आध्यात्मिक धन की प्राप्ति हुई हो।

१ मनुष्य शरीर की बिजली के चमत्कार—शरीर की बिजली से होने वाले आश्चर्य जनक कार्यों का वैज्ञानिक विवरण।

२ धनवान बनने के गुप्त रहस्य—धन कुवेरों द्वारा कार्य रूप में आये हुए ऐसे सिद्धान्तों का वर्णन है जिन पर चलने से आप भी धनवान बन सकते हैं।

३ पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विद्या—मन चाही सन्तान प्राप्त करने के सारे रहस्य इस पुस्तक में खोल कर रख दिये हैं।

४ मरने के बाद हमारा क्या होता है—मृत्यु से लेकर नये जन्म तक जीव जिन परिस्थितियों में रहता है उनका महत्वपूर्ण विवेचन।

५ मित्र भाव बढ़ाने की कला—जीवन के उत्कर्ष में सच्चे मित्रों का सहयोग बड़ा भारी सहायक होता है। अधिक संख्या में, अच्छे और सच्चे मित्र आसानी से प्राप्त करने के रहस्य।

६ आकृति देखकर मनुष्य की पहचान—निर्धारित विषय को ऐसे अच्छे सुबोध ढंग से समझाया गयाहै कि हर कोई लाभ उठा सकता है।

७ संजीवनी विद्या—जिन्दगी किस तरह जीनी चाहिये इस प्रश्न का संतोष जनक समाधान

८ अमृत पारस और कल्पवृक्ष की प्राप्ति—यह तीनों विभूतियां सुरलोक में बताई जाती हैं। पर इस पुस्तक से बताया गया है कि यह तीनों तत्व मनुष्य के अन्दर हैं, और यदि कोई उनका उपयोग करना सीख जाय तो देवताओं के समान समृद्ध हो सकता है।

९ हमें स्वप्न क्यों दीखते हैं—स्वप्न दीखने के कारण उनके हानि लाभ, स्वप्नों द्वारा अदृश्य बातों की जानकारी दुःस्वप्नों का निवारण आदि अनेक महत्व पूर्ण बातों का वैज्ञानिक विवेचन।

१० विचार करने की कला—मनुष्य जैसे विचार करता है वैसा ही बन जाता है इस तथ्य को ध्यान में रख कर अच्छे विचारों को अपनाने

और कुविचारोंको त्यागने की रीतियाँ समझाई हैं।

११ हम वक्ता कैसे बन सकते हैं—चतुर वक्ता, कुशल व्याख्यान दाता बनने की इच्छा रखने वालों के लिए यह बड़े ही काम की पुस्तक हैं।

१२ लेखनकला—लेख, पुस्तकें एवं कविता लिखने की कला सीखने वालों के लिए यह पुस्तक अनुभवी गुरु का काम देती है।

१३ सफलता के तीन साधन—आकांक्षा, परिश्रम शीलता और कष्ट सहिष्णुता के सहारे मनुष्य किस प्रकार कठिन से कठिन कार्यों को पूरा कर सकता है यह विज्ञान इस पुस्तक में बड़े हृदय ग्राही रूप से समझाया गया हैं।

१४ शिखा और सूत्र का रहस्यमय विवेचन—चोटी और जनेऊ, हिन्दू धर्म के दो प्रमुख चिन्ह हैं। इस पुस्तक में इन दोनों का गुप्त रहस्य, महत्व और लाभ सविस्तार बताया गया है।

१५ दैवी संपदाएं—धन दौलत पृथ्वी की संपदा है। इससे सांसारिक सुख मिलते हैं। पर दैवी संपदाएं वे सद्‌गुण हैं, जिन से लौकिक और परलौकिक सुख शान्ति मिलती है उनका वर्णन।

१६ कुछ धार्मिक प्रश्नों का उचित समाधान—श्राद्ध, तीर्थ, दान, देववाद आदि विषयों की शङ्काओं बुद्धि संगत समाधान।

ब्रह्म विद्या का अमृतोपम ज्ञान—तृतीय मास का पाठ्यक्रम।

ब्रह्मविद्या संसार की सब बड़ी विद्या है। जिसे जानकर और कुछ जानना बाकी नहीं रहता। ईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, मृत्यु, बन्धन, मोक्ष, कर्मफल, धर्म अधर्म, आत्म दर्शन, ईश्वर प्राप्ति, स्वर्ग, नरक, ऋद्धि, सिद्धि आदि अनेकों गूढ़ आध्यात्मिक विषयों को ऐसे सरल सुबोध ढंग से तर्क और प्रमाणों के आधार पर समझाया गया है कि एक बालक भी भली प्रकार समझ सकता है। इतने गूढ़ और महत्व पूर्ण विषय पर इतना सर्वांगपूर्ण और सुबोध साहित्य अन्यत्र कहीं मिल सकता।

१ ईश्वर कौन है? कहां है? कैसा है—ईश्वर सम्बन्धी सम्पूर्ण शंकाओं का वैज्ञानिक समाधान एवं ईश्वर साक्षात्कार के प्रामाणिक साधन।

२ क्या धर्म? क्या अधर्म?—धर्म अधर्म की गंभीर एवं गूढ़ गुत्थी को बड़े सरल और हृदयग्राही ढंग में सुलझाया है।

३ गहना कर्मणो गतिः—कर्मों का उलटा फल मिलते देख कर बड़ भ्रम पैदा होता है। उन सब भ्रमों को यह पुस्तक निवारण कर देती है।

४ जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर तात्विक प्रकाश—चौरासी लाख योनियों में भ्रमण, जन्म मरण का चक्कर, पुनर्जन्म, स्वर्ग मुक्ति आदि की विवेचना।

५ पंचाध्यायी धर्म नीति शिक्षा—इसमें धर्म ग्रन्थों के चुने हुए बड़े ही मार्के के शिक्षाप्रद श्लोक अर्थ समेत पांच अध्यायों में संग्रह हैं।

६ शक्ति संचय के पथ पर—शक्ति ही सुख की जननी है इस लिए अनेक प्रकार की शक्तियों के संचय का प्रदर्शन किया गया है।

७ आत्म गौरव की साधना—अपना गौरव एवं महानता स्थिर रखने तथा बढ़ाने के सुदृढ़ सिद्धान्तों का दिग्दर्शन।

८ प्रतिष्ठा का उच्च सोपान—घर और बाहर सर्वत्र प्रतिष्ठा, आदर, सम्मान, श्रद्धा, प्राप्त करने का मार्ग इसमें बताया गया है।

९ आन्तरिक उल्लास का विकाश—अन्तःकरण में सच्चे सुख, सन्तोष, शान्ति तथा उल्लास प्राप्त करके एवं जीवन को आनन्द मय बनाने की शिक्षा।

१० आगे बढ़ने की तैयारी—भीतरी और बाहरी जगत में सब प्रकार की उन्नति करने की योजना।

११ अध्यात्म धर्म का अवलम्बन—मनुष्यों के बनाये हुए सम्प्रदाय, मजहब, फिरके तो अलग२ हैं पर सब की आत्मा का एक ही धर्म है। उसी एक आत्म धर्म का विवेचन।

१२ ब्रह्म विद्या का रहस्योद्‌घाटन—योग, जन्त्र, तन्त्र, देव, सिद्ध, वरदान, सिद्धि आदि का वैज्ञानिक विवेचन।

१३ ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग—सदाचार, सत्कर्म और परोपकार से ईश्वर और स्वर्ग की प्राप्ति की शास्त्रीय पुष्टि।

१४ विवेक सतसई—कबीर, रहीम, तुलसीदास आदि के चुने हुए, मार्मिक, विवेक उत्पन्न करने वाले ७०० दोहों का संग्रह।

१५ अध्यात्म शास्त्र—अध्यात्म शास्त्र क्या है? इसकी दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, तार्किक

और धार्मिक दृष्टि से विवेचना की गई है।

१६ अध्यात्म विद्या का प्रवेश द्वार—ईश्वर और परलोक का विवेचन व उसकी प्राप्ति का मार्ग

१७ वैज्ञानिक अध्यात्मवाद—आध्यात्मवाद के हर पहलू पर इस पुस्तकें में वैज्ञानिक रीति से प्रकाश डाला गया है।

चमत्कारी साधनाएं—चतुर्थ मास का पाठ्यक्रम।

यह पुस्तकें एक ऐसा अध्यात्मिक साधना क्रम है, जिसका नित्य एक दो घंटे अभ्यास करने पर थोड़े ही दिनों में चमत्कारिक आत्म शक्तियां प्राप्त की जासकती हैं। योगी लोग वर्षों कठिन परिश्रम के पश्चात् जिन शक्तियों को प्राप्त करते हैं, उन्हें सुगमता पूर्वक घर रह कर स्वल्प काल में प्राप्त करने की यह एक सीधी पगडंडी है। इन पुस्तकों में दी हुई साधनाएं ऐसी नहीं हैं जिनमें कुछ भूल होजाने से किसी अनिष्ट की संभावना हो। थोड़ा सा भी इनका साधन किया जाय, तो भी बहुत लाभ मिल जाता है। यह पुस्तकें योग के महान लाभों से लाभान्वित होने का सर्व सुलभ मार्ग है।

१ मैं क्या हूं—आत्मा का प्रत्यक्ष दर्शन करने की कुछ सरल साधन-विधियों का वर्णन।

२ परकाया प्रवेश—मैस्मरेजम के ढंग पर आत्म शक्ति को दूसरे के शरीर में प्रवेश करके उसे प्रभावान्वित करने की विद्या।

३ स्वर योग से दिव्य ज्ञान—स्वरोदय विद्या द्वारा गुप्त और भविष्य की बातों को जान लेने की रहस्य पूर्ण साधना।

४ वशीकरण की सच्ची सिद्धि—दूसरों को वश में करने के सच्चे और हजारों बार आजमाये हुए प्रयोगों का वर्णन।

५ जीव जन्तुओं की बोली समझना—मूक पशु संकेतों द्वारा किस प्रकार अपने मनोभाव हमारे ऊपर प्रकट करते हैं, एवं शकुन विद्या का क्या रहस्य है, यह बताया है।

६ ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग—इन तीनों योगोंको हर ग्रहस्थ सुविधा पूर्वक नित्य व्यवहारिक जीवन में उतर कर अपने को आनन्दित किस प्रकार बना सकता है इसका उत्तर।

७ यम नियम—अष्टांग राज योग की पहली सीढ़ी ५ यम और ५ नियमों की सरल साधना।

८ प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—योग की इन तीनों कठिन साधनाओं को नये ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि हर कोई इनका अभ्यास सुगमता पूर्वक कर सके और योग के महान् फल प्राप्त कर सके।

९—मैस्मरेजम की अनुभव पूर्ण शिक्षा—मैस्मरेजम विद्या के रहस्य इस छोटी पुस्तक में हैं। जादूगरों द्वारा जो चालाकियां मैस्मरेजम के नाम पर बरती जाती हैं वह भी इसमें खोल दी।

१० हस्त रेखा विज्ञान—योरोप के सुप्रसिद्ध पामिस्ट डा० शेरो के सिद्धान्तों द्वारा हस्त रेखा संबंधी महत्व पूर्ण जानकारी इसमें दी है।

११ गायत्री की चमत्कारी साधना—वेदमाता गायत्री की मंत्र साधना के अनेकों विधान और उनके अद्भुत लाभों का दिग्दर्शन कराया है।

१२—ग्रहस्थ योग—ग्रहस्थ धर्म का पालन करना एक योग साधना है। इस पुस्तक में बताई हुई व्यवस्था पर आचरण करने से अपना घर स्वर्ग के समान आनन्द मय बन सकता है।

१३ प्रार्थना के चमत्कार—ईश्वर प्रार्थना का विज्ञान, सिद्धान्त, रहस्य, महत्व तथा लाभ बताते हुए उन चमत्कारों का भी वर्णन किया गया है जो प्रार्थना की शक्ति से प्राप्त होते हैं।

१४ विचार संचालन विद्या—बेतार की इस आध्यात्मिक तार बर्की द्वारा दूर २ रहने वाले दो व्यक्ति अपने मनोभावों को एक दूसरे के पास भेज सकते हैं।

१५ सुखी वृद्धावस्था—पर इस पुस्तक में ऐसे उपायों बताये गये हैं जिनसे वृद्धावस्था बड़ी सुख मय बन सकती है।

१६ आत्मोन्नति का मनोवैज्ञानिक मार्ग—कुछ ऐसे महत्व पूर्ण उपाय इस पुस्तक में बताये गये हैं जिनके आधार पर आत्मोन्नति के पथ पर बढ़ने में बड़ी सहायता मिलती है।

प्रत्यक्ष फलदायिनी साधनायें—इस पुस्तकमें अनुभव पूर्ण बड़ीही चमत्कारी सरल साधनायें हैं।

पाँच रु० से अधिक की पुस्तकें लेने पर डाक खर्च माफ। पता-'अखंडज्योति' कार्यालय, मथुरा।

अवसर को मत चूकिए।

(श्री० स्वेट मार्डेन)

कारलाईल कहा करते थे-हितकारी अवसर कभी कभी क्षणभर के लिए आता है, हम उसे खोदेते हैं और महीनों तथा वर्षों का नाश होजाता है। लाफान्टेन का उपदेश है कि-दौड़ना फिजूल है, अवसर की घड़ियों का सजग होकर उपयोग करो तुम्हें सफलता मिलेगी। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ ऐसी घड़ियां आती हैं जिन पर उसके भाग्य का बनना और बिगड़ना निर्भर रहता है। यदि मन उस अवसर पर हिचकिचा गया तो समझिए कि सब कुछ चला गया।

नेपोलियन सर्वोत्कृष्ट अनुकूल समय का बड़ा ध्यान रखता था। उसे अपने हाथ से न जाने देकर वह बड़ी बड़ी शत्रु सेनाओं पर विजय प्राप्त कर लेता था। उसका कहना है कि पांच मिनटों का मूल्य न समझने के कारण ही अस्ट्रेलियन हार गये। वाटरलू की लड़ाई में नेपोलियन के हार जाने का कारण भी समय चूक जाना ही था। जनरल ग्राउच समय पर नहीं पहुंचे और उसके लिए नेपोलियन को ठहरना पड़ा, बस, इतनी सी भूल से नेपोलियन कैद होगया।

'इसको तो कभी भी कर लेंगे, जिस काम के बारे में यह समझा जाता है वह कभी भी पूरा नहीं होता। आज के काम को कल पर टाल देने से एक आलस्य, उपेक्षा एवं निरुत्साह भरी आदत पड़ती है जिसके कारण क्रिया शक्ति कुंठित हो जाती है टाल देने का मतलब प्रायः छोड़ देना होता है। किसान अषाढ़ में यदि खेत जोतने और बीज बोने के काम को आगे के लिए टालता जाय तो उसकी फसल कैसी पकेगी, यह कहना कठिन है। सर वाल्टर रेले से एक आदमी ने पूछा कि-आपने अपने जीवन में इतने महत्व पूर्ण काम किस प्रकार कर डाले? तो उन्होंने कहा-मझे जो कुछ करना होता है उसे भविष्य के लिए नहीं टालता यही मेरी सफलताओं का रहस्य है।

दौड़ की बाजी में पांच मिनट देर से दौड़ने वाला मनुष्य क्या कभी बाजी जीत सकता है? जीवन भी एक दौड़ है। जो अवसर चूकता है, जरूरी कामों में टाल टूल करता है वह अन्त में निराशा, शोक और असफलता का भागी बनता है। जो विद्यार्थी सोचता है कि-"अभी परीक्षा के बहुत दिन पड़े हैं, इतने पाठ तो थोड़े ही दिनों में याद कर लूंगा। अभी से क्या जल्दी है।" उसका परीक्षा में सफल होना कठिन है। टालटूल के लिए जो बहानेबाजी आज की जारही है वह आगे भी जारी रहेगी और जब समय बिलकुल ऊपर आजायगा तो कुछ करते धरते न बन पड़ेगा।

'कल' शैतान का दूत है। इतिहास साक्षी है कि इस 'कल पर टालने' की छुरी ने कितने ही प्रतिभावानों के गले काट डाले हैं। कितनों की योजनाएं अधूरी छुड़वाई हैं। कितने "हाय कुछ न कर पाया" कहते हुए हाथ मलते रह गये। 'कल' आलस्य और असमर्थता का द्योतक है। जिस काम को करना आवश्यक है, जिसे करना निश्चित कर लिया है और जो आज किया जा सकता है, उसे कल पर टालना एक भारी भूल है।

एक रेल लाने वाले की घड़ी जरा सुस्त हो जाती है तो दो गाड़ियां लड़ जाती हैं। बहुत से अमूल्य जीवन नष्ट होजाते हैं। एक एजेन्ट समय पर रुपये भेजने में देरी करता है तो एक व्यापारी का दिवाला निकल जाता है। एक दूत पत्र समय पर पहुंचाने से देरी कर देता है और एक निरप-राध व्यक्ति सूली पर चढ़ा दिया जाता है।

समय को व्यर्थ न गंवाओ, उत्तम अवसर को मत चूको, जो लाभदायक है उसे आज ही अपनाओ। जो काम काज हो सकता है उसे कल के लिए मत टालो। उपयोगी अवसर चूक जाने के बाद फिर पछताना ही हाथ रह जाता है।

मनुष्य का शरीर है परोपकार के लिये।

[रचियता—श्री 'रजेश']

ये बात ठीक है, कही नहीं प्रचार के लिये।
मनुष्य का शरीर है परोपकार के लिये॥

परोपकार-हीन व्यक्ति भूमि हेतु भार है,
किसी बड़े विचारवान का बड़ा विचार है।
कि जो परोपकार-लीन है तथा उदार है,
वही महान है, वही बड़ा सभी प्रकार है॥
बड़े बनो, बनो न किन्तु भूमि-भार के लिये।
मनुष्य का शरीर है परोपकार के लिये॥

तमाम भूमि-लोक आज रोग-शोक से भरा,
कुभावना मिटा रही मनुष्य की परम्परा।
समाज के बचाव का रहा न और आसरा,
पुकारती तुम्हें अधीरता भरी वसुन्धरा॥
सहायता करो व्यथा भरी पुकार के लिये।
मनुष्य का शरीर है परोपकार के लिये॥

बनो सुकर्म वीर, वक्त है न बात चीत का,
प्रसार हो नये समाज में नवीन गीत का।
विचार आज छोड़ दो भविष्य का, अतीत का,
रहे न सामने कभी सवाल हार-जीत का॥
करो न व्यर्थ हर्ष-शोक, जीत-हार के लिये।
मनुष्य का शरीर है परोपकार के लिये।

कुरूढ़िवाद छोड़ विश्व का नवीन गात हो,
कुरीतियां मिटें सभी, नई प्रत्येक बात हो।
निशाचरी निशा विलीन हो, नया प्रभात हो,
तथा नये समाज का नवीन सूत्र-पात हो।
नवीन हो, बढ़ो नवीन मुक्ति-द्वार के लिये।
मनुष्य का शरीर है परोपकार के लिये॥

प्रकाशक व मुद्रक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, "अखण्ड ज्योति" प्रेस, मथुरा।